

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180430

UNIVERSAL
LIBRARY

कबूतरखाना

लेखक की अन्य रचनाएँ

उपन्यास

बोरीवली से बोरीबन्दर तक	३.५०
कबूतरखाना	२.५०
हौलदार	प्रेस में
चिट्ठीरसैन	प्रेस में
तिरिया भली न काठ की	प्रेस में
किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई	प्रेस में

कहानी

कालिका अवतार	प्रेस में
--------------	-----------

लोक-साहित्य

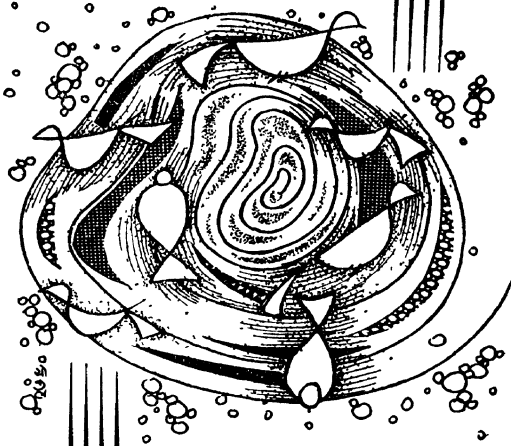
कुमाऊँ की लोक-कथाएँ (१)	१.५०
बारामण्डल की लोक-कथाएँ	१.२५
चम्पावत की लोक-कथाएँ	१.५०
डोटी-प्रदेश की लोक-कथाएँ	१.२५
तराई-प्रदेश की लोक-कथाएँ	१.२५
नैनीताल की लोक-कथाएँ	१.२५
अलमोड़ा की लोक-कथाएँ	१.२५
कुमाऊँ की लोक-कथाएँ (२)	प्रेस में
कुमाऊँ की लोक-कथाएँ (३)	प्रेस में

बाल-उपन्यास

हीरामन तोता	प्रेस में
-------------	-----------

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

कबूतरखाना



शैलेश भट्टियानी



आत्माराम राण्ड सर्स

काश्मीरी गेट, दिल्ली

KABUTARKHANA

A Novel

by

Shailesh Matiyani

Rs. ~~100~~

COPYRIGHT © BY ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	100	100
प्रथम संस्करण	:	१	६ ६ ०
आवरण	:	योगेन्द्रकुमार	लल्ला
मुद्रक	:	मूवीज प्रेस,	दिल्ली-६

बम्बई के
गणपत भाऊ-सरीखे
कबूतरों को

उपन्यास की कथा-वस्तु और
उसके पात्र कल्पना-प्रसूत हैं !

दो शब्द

‘कबूतरखाना’ बम्बई नगर की आत्मिक-पृष्ठभूमि से अनु-प्राणित मेरा दूसरा उपन्यास है। बम्बई का एक प्रसिद्ध मोहल्ला भुलेश्वर—इसकी कथा-भूमि का केन्द्र है। यों भुलेश्वर बम्बई के कई और भी मोहल्लों का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए उसे प्रतीकरूप में देखा-परखा जाए।

इतना स्वीकार करते संकोच नहीं कि उपन्यास में मात्र दो वर्ग और प्रवृत्ति-विशेषों को ही रूपायित करने का प्रयास रहा है मेरा—बम्बई के समग्र जन-जीवन के चित्रण का नहीं। इसलिए, इस उपन्यास की प्रत्येक वस्तु सीमित है—कथा, भाषा और शैली, तीनों एक सीमित दायरे और परम्परा से सम्बद्ध हैं।

कथा गणपत के माध्यम से कही गई है इसलिए उसकी भाव-भूमि, कथा और भाषा-शैली गणपत की ही रहे, बिलकुल गणपत की जैसी ही औरों को लगे, ऐसी मेरी अपनी आकांक्षा रही है।

मैं ढाई-तीन वर्ष की अवधि तक, बम्बई की एक प्रसिद्ध चाट की दुकान में रहा। एक नौकर की हैसियत से, वहाँ के दूसरे नौकरों के संसर्ग-सम्पर्क में आया। इसके अलावा, सेठों के घरों में काम करने वाले घाटी लोगों का साथ भी बहुत मिला। सेठों के घरों में काम करने वाले घाटी लोगों को ‘रामा’ कहकर सम्बोधित किया जाता है।

ऐसे ही एक 'रामा' से उसकी आत्मकथा सुनी; उसी के मुख से, उसी की भाषा में—उसी के स्नेह-संवेदन-क्रोध-प्राक्कोश और दार्शनिक मनोभावों के साथ—और लोग भी सुनें—इसी उद्देश्य से, गणपत रामा को सबके सम्मुख अपनी कथा कहने को प्रस्तुत कर सका हूँ ।

तो, अब आप स्वयं गणपत रामा की कथा सुनें.....

और जहाँ तक मेरे द्वारा गणपत रामा के प्रस्तुतीकरण का प्रश्न है, यही कहूँगा, कि गणपत भाऊ के शब्दों में, 'जो आँखी से देखा, जो कानों से सुना—बोच बोलता !' की प्रवृत्ति मुझमें भी है ही.....बस.....

'कथा कैसी लगी ?' इसका उत्तर श्रोताओं से पा सकूँ, तो अपने अन्तर्मन में प्रश्नवती आँखें लिए फिरते गणपत भाऊ को बतला सकूँगा, कि 'गणपत भाऊ, ऐसी लगी !'.....

शैलेश मटियानी

कबूतरखाना

‘कबूतरखाना’ शैलेश मटियानी का दूसरा उपन्यास है। उनके पहले उपन्यास ‘बोरीवली से बोरीबन्दर तक’ प्रकाशित होते ही उपन्यास-साहित्य में एक कॅंपकॅंपी-सी व्याप्त हो गई। जितने मुँह, उतनी ही बातें ! वास्तव में वह प्रत्येक पाठक के बौद्धिक, वैचारिक और आत्मिक धरातल को भकभोर देने वाला मर्मवेधी उपन्यास था। जो उसकी गहराई तक जाकर गोता लगा आया, उसका हृदय खिल उठा। वह सच्चे मन से शैलेश मटियानी का प्रशंसक बन गया और जिन्होंने किनारे पर रहकर ही मोती निकालने चाहे वे कोरे रह गए। उन्हें इस उपन्यास में सिर्फ बुराई दिखाई दी, अच्छाई कहीं नहीं। कुछ ऐसे भी जिनके मुँह में खारा पाणी भर गया लेकिन उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यह एक शक्तिशाली उपन्यास है। ‘आजकल’ ने लिखा कि यह उपन्यास व्यंग्यरूप से सेक्स भावना में परिलिप्त है और अन्त में कहा—‘बोरीवली से बोरीबन्दर तक’ में खूब अच्छी पकड़ है। शैलेश मटियानी की शैली भी शंसनीय है और ‘बोरीवली से बोरीबन्दर तक’ एक शक्तिशाली और अंकुश-रचनीय रचना है।”

‘आदर्श’ ने लिखा कि लेखक द्वारा जगह-जगह अश्लील वाक्यों का प्रयोग अन्यायपूर्ण नहीं है। अन्त में यह भी स्वीकार किया कि शैलेश मटियानी की कलम में जोर है।

‘विशाल भारत’ की दृष्टि में उपन्यास का कथानक कमजोर है—किसी सामान्य हिन्दी पिक्चर के-से उतार-चढ़ाव वाला। राजकमल चौधरी ने भी ‘ज्ञानोदय’ के माध्यम से शैलेश मटियानी को सलाह दी कि अच्छा होता यदि वह इस उपन्यास को किसी फिल्म-निर्माता के पास ले जाते। (मानो जिस उपन्यास के कथानक पर अच्छी फिल्म बना सकती है, वह निम्नस्तरीय है, और इस श्रेणी में अब प्रेमचन्द का ‘गोदान’ भी आ गया है)

यह 'कबूतरखाना' उन पत्र-पत्रिकाओं की प्रशंसा का शुभ परिणाम है जिन्होंने लिखा कि आंचलिक उपन्यासों के लेखकों को इस उपन्यास से प्रेरणा लेनी चाहिए। बम्बई-जैसी महानगरी में पलनेवाले आबारा समाज का इतना जीवन्त और विश्वास्य चित्रण अब तक देखने को नहीं मिला। एक पत्र ने लिखा—“जिस समाज का चित्र वह खींचना चाहते हैं, वह कटुता और अश्लीलता के गहरे रंगों से ही उभर सकता है, इसलिए भिन्नकने-ठिठकने या दूसरों के पीछे छिपने की जरूरत नहीं।” एक दूसरे पत्र की दृष्टि में शैलेश मटियानी ने सधी हुई लेखनी और मंजी हुई भाषा द्वारा न केवल उपन्यास को ही सजीवता दी है अपितु उपन्यास-क्षेत्र को एक नई गति, नई दिशा दी है। उद्देश्य में लेखक बहुत ही सफल हुए हैं जिसके लिए समाज उनका ऋणी है, साहित्य-जगत आभारी है और वह स्वयं बधाई के पात्र हैं।

समालोचकों में इतना मतभेद है, हमें इस बात पर कोई एतराज नहीं, यह तो आलाचकों का प्रथम कर्तव्य (?) है। हमें एतराज है उन आलोचकों पर जिनकी नाक इतनी नाजुक हो गई है कि हर आधुनिक बात में से अश्लीलता और अनैतिकता की गंध पा लेते हैं या हर समय ऐसा चश्मा लगाए रहते हैं जिसका रंग काला है, जिसमें हर चीज काली दिखाई देती है।

'सैनिक समाचार' ने उन्हीं लोगों के लिए लिखा है—“अनेक स्थलों पर उपन्यासकार ने अपनी शैली में सत्य के, कटुसत्य के दर्शन कराए हैं। सम्भव है कुछ आदर्शवादी इसे अश्लीलता का रूप दें किन्तु सारे उपन्यास में अश्लीलता इतनी ही है जितना कि गरीबी और बेवसी को अश्लील कहा जा सकता है।”

'युगधर्म' ने भी यही कहा—“शैलेश मटियानी की भाषा कहीं-कहीं तीखी और स्पष्टवादिता लिए है कि साधारण पाठक कुछ बिचक जाता है पर यथार्थ को भुठलाना कोई अक्लमन्दी नहीं है। कड़वी दवा पीने से इनकार करने वाला रोगी, रोग की भयंकरता को न्योता देता है।”

'कबूतरखाना' उपन्यास के इस पृष्ठों में शैलेश मटियानी के प्रथम उपन्यास की वकालत हमारे लिए इसलिए आवश्यक हो गई कि 'कबूतरखाना' में भी ईमानदारी के साथ बम्बई के रौरव नरक का आवरण उठाकर पाठकों के

सम्मुख रख दिया गया है। बम्बई की रगों में पनप रहे अत्याचारों और शोषण के विषले कीटाणुओं को देखने के लिए यह खुदबीन का काम देगा। रही अश्लीलता की बात, सो अश्लीलता का चित्रण यदि केवल मानव-मन को कामना, वासना और व्यभिचार की दिशा में ले जाने के लिए किया जाता है तो वह परिहार्य है, घातक है; पर सप्रयोजन किया गया यौन या काम-सम्बन्धी चित्रण सोचने-विचारने की एक स्वस्थ दिशा की ओर संकेत करता है।

‘कबूतरखाना’ एक पंख नोचे हुए कबूतर की अन्दरूनी तड़प और बाहरी गुटुरगूं की एक बोलती हुई तस्वीर है। बम्बई के सेठ-सेठानियों के कबूतरनुमा नौकर गणपत रामा की मुंहबौली दास्तान है और अन्तस को अकुला, मस्तिष्क को झुंझकोर देने वाली आपबीती अनुभूतियों का एक ढांचा है, जिसकी पसली-पसली आतशी शीशे का एक चटका हुआ टुकड़ा है और जिसका रेशा-रेशा एक रिसता हुआ नासूर !

हमें आशा है कि पाठक ‘बोरीवली से बोरीबन्दर तक’ के समान ही ‘कबूतरखाना’ भी अपनाएँगे।

एक

वो च बोलता

नवरा...उक्...

मवाली...उक्...उक्

मिलेला...उक्...उक्...उक्...!!!

काय माभा नाँव ?...

गणपत ..गणपत रामा...

सातारा वाला...

उक् !

जरा हटके...जरा बचके...ये है बॉम्बे...

काय, साला गजकरण ? आँखी में चश्मा लगाकूँ चलता क्या, रे ?... देसाई बाबू का बिटिया... वोच नटखट पोरी वसन्ती बाई का माफ़िक ? क्या, रे गजकरण ? वसन्ती बाई जिस तरहाँ से चार

१. वही कहता हूँ ।

आँखी का तीर निशाने कूँ छोड़ता है, वोच माफ़िक तू भी चलाएँगा,
क्या बेटा ?

हट्ट ट्ट ट्ट...

जरा बाजूला हाँक...

पाँडुरंगा ची आँलाद !

उक् !!

पटेल ! बोल...क्या खिलाईगा आज, रे ?

हमेरे कूँ क्या पूँछता वे ?

गाँठिया-पापड़ी खाईगा तुमेरे गाँडा गुजराती लोग !

अपन साला घाटी-मराठी...

ऊसल-पाव...काँदा भजीया...सीरा-बटाटा बड़ा...सुकी भाजी,
पातल भाजी का खानेवाला !

क्या, रे ? साला हलकट...ऐसा आँखी फाड़-फाड़ के क्या हमारा
सूरत देखता ? अपने को कोई आँडू-पाँडू समझा क्या, रे ? अपन
क्या घाटी-मराठी है ? साला डैमिश, हम भी तुमेरे माफ़िक गाँडा
गुजराती है !

साला, तुमको अपना '...' का भी खबर नहीं...हमेरे को कर्हिगा,
आक्खा गुजरात का, आक्खा महाराष्ट्र का—आक्खा इंडिया का,
आक्खा वरल्ड का हिस्टरी कबूतर का माफ़िक हग देंगा !

क्या, रे...म्हारी चूँदड़ीनो रंग गुलाबी...

हो, म्हारी चूँदड़ीनो रंग...

क्या, पोपट !—बोले तो, खोंचा दे दे—गरबा-रास तेरे कूँ
बताएँगा ! क्या रे, बोले तो पेटी बजाएँगा, बोले तो तबला...क्या
रे, इंग्लिश गाना-डान्स सुनेगा ?... जरा हटके, जरा बचके... ये है

नीचे कूँ भुक के जभी भाड़ू देगी कबूतर .. हाए, पंछी !... उसका जिसम... उसका हुसन... उसका जादू...

उक् !!!

हौलदार... जमेदार .. इन्सपेटर ..

ठोले^१ लोग की तो ऐसी की तैसी !

कोण साला हमरे को पीने से रोकता है ?...

उक् !

क्या हवलदार साहिब, आप भी क्या सितम करते ! आप हमरे आई-बाप के सरीखा है ! हमेरा मालिक है... अरे, हम बोलता ना, इस साला मुंबई में हवलदार लोग नहीं होईगा, तो साला आक्खा मुंबई में मवाली लोग का शादी-महफ़िल होईगा !... क्या, हौलदार, अपन बाल-बच्चा लोग का शपथ खाके कहता है, आज तो हम '....' भर भी पियाच नहीं !... क्या, आई शपथ, दारू पीना सूत पीना हम सरीखा च^२ समझता है !...

उक् !!

गेला... गेला... गेला...

साला हवलदार लोग—डैमिस का श्रीलाद, '...' के पोंतरे !
'....' के '....' गाड़व !

दारू पिया हम ...?

कौन साला '....' का '....' पिया ?

पिया तो साला, किसी के आई-बाप का क्या पिया ?... वो कासम भाई बोलता था—“हम दारू को, दारू हमारे गम को और

१. पुलिस । २. 'च' का प्रयोग 'ही' के अर्थ में होता है ।

गम हमारी जिन्दगी को पीता है !”

उक् …!!!

गम .. दारू .. आई शपथ, ये गारणी तो इमरती बाई के रेड्ड से च आता होईगा !... लेके पेहला-पेहला प्यार, भरके आँखी में खुमार—जादू नगरी से आया हे कोई जादूगर— क्या जोरदार लावनी है ! ऐसा च जोरदार लावनी अपना वो अँधेरी, मेनरोड कुरलावाला भारती व्यास भी लिखता होता—“ना भाए तेरा बैंगला, ना भाए ये बिछौना—अभी तो मनम मेरा हुआ ही नहीं गौना—”
... वो जालिम कम्मो भी क्या आइडिया से कमर टेढ़ी करता था...!

ये शाहीर लोग को भी अभी हम क्या बोले ! टेढ़ा च बोलिगा, टेढ़ा च लिखिगा, टेढ़ा च करिगा !

उक् …!!!!

वो, अपना मेनरोड कुरलावाला—भारती व्यास !

वो दिवस हमारा जवेर भाई सेठ के घर-पीछूँ मुशायरा होता । ‘मुशायरा’ म्हणजे काय ? कवि-सम्मेलन उसकूँ बोलते ! गवर्नमेण्ट का तरफ से होता—दारू-वन्दी का वास्ते । उधर—माधो बाग के पीछूँ !

अपना सेठ जवेर भाई कूँ भी शाहीर लोग उधर च बुलाया होता ।

वो... क्या नाम होता उसका... तुरन... वो अपना सेठ जवेर भाई का च शाहीर ! अपना सेठानी का च शाहीर ! वोपण उधर च आयेला होता ।

अपन कसम खाके बोलता । क्या, भूठ बोलना गू खाना बराबर समझिगा । अभी आप लोग को क्या बोले ? हमरे आई-बाप का

सरीखा आप लोग होने से—जाड़ा-पतला बोलने कूँ भारी पड़ता है ।
क्या अपन कोई मवाली भाई थोड़ी च है ? अपन भी आप लोग का
च सरीखा शरीफ खानदान का नमूना है । साला घाटी-मराठी कोई
और होईगा—रामा साला कोई और...

अपना सेठ जवेर भाई...?

सेठानी नर्मदा बाई ...?

शाहीर तुरन...?

बेबी कालिन्दी...?

वो शाहीर भारती व्यास...?

उक् ...!!!!

शपथ आई का ..

हमेरी आँखी से जो देखा,

हमेरे कान से जो सुना,

वो च बोलिगा—

क्या, अपन गू नहीं खाता, अन्न खाता है । अन्न खाके, पोछूँ
भूठ बोलिगा—ऐसा हलकट अपन नहीं है । परण, अपन कभी-कभी
सोचता है, ये सेठ लोग, ये सेठानी लोग, ये शाहीर लोग...

अभी क्या बोले । एक-एक का पोल-पट्टी खोलिगा, तो अपने
को च केहने कूँ भारी पड़िगा !... परण, आज तो हम बोलिगा च !

एक-एक का पोल-पट्टी खोलिगा च !!

भूठ बोलना, गू खाना—एक सरीखा !!!

जो हमेरी आँखी से देखा,

जो हमेरे कान से सुना,

वो च बोलता—

दो

हस्ती का दाँत^१

सेठ लोग का जिंदगी...

सेठानी लोग का जिंदगी...

शाहीर लोग का जिंदगी...

हमेरो छोटी बाई, बेबी कालिन्दी का जिन्दगी...

देसाई बाबू की पोरी का जिन्दगी—वो च बसन्ती बाई ! वो
खम्भा देवी मंदिर का पुजारी भैया—हमेरी सेठानी वसुन्धरा बेन...
ये लोग का जिन्दगी—

हमेरे को इस महीने में भी वो च एक हरा पत्ता थमाया !

ये लोग की जिन्दगी को भी क्या बोले ! सच्ची बोले, तो हस्ती
का दाँत का माफ़िक च—देखने का और, खाने का और !

शाहीर भारतो व्यास का बात पहले बोले क्या ?

१. हाथी के दाँत ।

ये लोग को क्या बोले ? 'वो च हगता, वो च खाता' वाला गोष्ठी है ! भारती व्यास वो दारू-बन्दी का मुशायरे में आया होता । उधर वो शायरी पढ़ता होता । शायरी म्हणजे—कविता । उसकी शायरी का मतलब होता—

जो लोग शराब पीता, वो हलकट होता । शराब पीनेवाला अपना माँ-बहन का खून पीता, ऐसा च वह बोला । बोला, नशा दो किसम का होता है—एक मोहब्बत का, एक दारू का—मोहब्बत के नशे में आदमी अपना देश के लिए, अपनी माँ-बहिन का वास्ते कुरबानी करता—

और दारू का नशा—पी के शराबी कीचड़ का गटर में गिरता, तो कुत्तरा मुँह पर पेशाब करता—

सुननेवाला लोग, उसका शायरी पर ये जोर-जोर से ताली पीटता होता—वाह वा ! वाह वा ! वाह वा !

अपना जोड़ीदार बाबू भाई भी 'वाह वा' करके, ताली देता होता । हम उसको एक लप्पड़ दिया—“क्या साला, पाँडू ! हिजड़ा लोग का माफ़िक क्या ता-थैया करता, रे ? ये भारती व्यास—जो च हगता, वो च खाता !”

बाबू बोला—“तुम पिया है, तुमेरा मगज़ फिर गयेला है !”

सच बोले, तो उस दिन हम पियेला च होता । पीछूँ गायक-बाड़ हौलदार हमरे कूँ पकड़कर ले गया, तो हम रास्ते में च कह दिया था—“हाँ, हाँ—पिया है । पण, अपना कमाई का पिया है—क्या, किसी साले का माँ-बहन को ‘...’ के पैसा थोड़ी लाया है !”

गायकवाड हमरे को एक लाफा दिया—

हम सोचता रहा, साला हम सच बोल दिया, तो लाफा खाया; ऊपर से आकखी रात-भर 'लॉकप' में अलग सड़ेगा—उधर वो शाहीर भारती व्यास लड्डू-समोसा उड़ाएँगा !...

वा रे कुदरत ! वा तेरा इन्साफ !

अरे, क्या इस भारती व्यास का एक-एक पोल-पट्टी हमारे से पूछो । क्या, अपन इसका-मरीखा कितना पोपट का मिट्टू-मिट्टू सुन चुका है । गया दोन वरस का बात है । हम रागू दादा के यहाँ दर रोज का पगार पर होता । कालीना-सांताक्रूज रो चचगेट—फोन्टेन—कोलावा तक माल सप्लाई करता होता । तभी विलेपारले और सान्ताक्रूज का स्टेशन पर भारती व्यास का वास्ते हम दर रोज एक वाटली कड़क दारू आईसक्रीम के ठेलेवाले नत्थू नजोरा को दे जाता होता । नत्थू नजोरा बोलता—“गणपत भाऊ, वो व्यास बाबू ऐसी-ऐसी बेहतरीन नज्में लिखता है—‘गोरे-गोरे हाथों में’...मगर, मय की मस्ती के बिना—तौवा, तौवा !...”

अपन सोचता है, जो शाहीर दारू पिए बिना एक लावनी पण नहीं लिख सकता, वो च शराब को माँ-बहन का खून बताता ? वो च कहता, शराबी का मूँह में कुतरा पेशाब करता ?—कैसा भूठ बोलके गू खाता ये लोग !

अपन जो करता, वो च बोन देता !

अभी हमारे सेठ की हिस्टरी पूछो हमारे से...

बताईगा, बताईगा, जरा सबूर करो ।

अपन पहला वो ठिकारणी का हिस्टरी बोलेगा, जिस ठिकारणी आकखा दो वरस, कबूतर का पाँखी का माफ्रिक, हमेरी आँखी के सामने च फुरं करके उड़ गया !

भुलेश्वर

भुलेश्वर मुंबई का जिगर है !

जिगर के बारे में सभी जानते हैं—सारे जिसम में, काँग्रेस के सिक्के में विलैत के राजा की फोटो की तरह, दिल-च-दिल है—एक ऐसी जगह, जो सारे जिसम का 'ट्रामफाटा' है; हिंदुस्तान के जिसम पर दिल्ली के जंकशन-सा; ताँबे के तारों में बिजली के कनकसन-सा। गिरजों में घंटों की टनाटन-सा, पुजारी के माथे पर त्रिपुण्ड-चन्दन-सा—अभी और क्या हम दिल के बारे में जाड़ा-पतला बोले ?

कासिम भाई बोलता था—“दिल—अरमानों का डेरा है !”

जभी उसके अरमानों का कनस्तर बजाके वो चमेली गोलपीठा पर जाके बैठ गई, तभी हमारे को बटाटा बड़ा के माफ़िक हँसी फूटा ! कासिम बोला था—“जालिम जान देती थी, यार, मेरे ऊपर—पर बीच बजार में बनारसी जूता मार के चली गई !”

हम बोला—“तेरी चमेली की चोली में चमारों का टोना-टटका जोर मार रहा है। तू तो गाधला है—चमेली तो न-जाने अभी कितनों के सिर में चमेली लगाएगी !”

कासम भाई बोला—“यार भाऊ, मेरा दिल...”

उसका बात काटके, हम बोला—“पोंतरे, ‘दिल-दिल’ को क्या अभी तेल लगाएगा ? अरे, आजकल का पंछी लोग तो दिल का दलिया बना के छोड़ देता है !”

वो बोला—“औरत की जात बड़ा बेवफ़ा होता है !”

हम बोला—“बेवफ़ा क्या, अच्छा-अच्छा लोग का तवला बजाके रख देता है ये लोग ! औरत की जात का ...”

हम कोई मनहूस गाली देने को होता, कि हमको अपनी माँ की याद हो आई, बहन की याद हो आई...जभी हम अपना सातारा में होता—क्या, तभी हमारे को हैजा हो गया होता। कै करते-करते आक्खा हड्डी-हड्डी नरम पड़ गया होता। गाँव का लोग हमारे से घिन करता होता। कोई पण नजीक नहीं आता होता। हमारी हालत पानी से भी पतली होता—विस्तर पर ही गू-मूत छोड़ता होता। क्या, हमारे दिल में आया हमारी जिदगी अब पंकचर होने को। कोई भी हमारे को एक घूँट पानी नहीं पिलाने को--

पण, अभी अपना आई को क्या बोले ! ..

हमको कलेजे से लगाकर रखती होती।

हमारी बहन मेरा गंदा विस्तर साफ करती, कापड़ धोती।

हमारे वास्ते माँ अपनी आक्खी जिदगी खतम कर दिया—हमारे लिए हमारी बहन की आक्खी जिदगी बर्बाद हो गया—

तभी हम सोचता है—औरत से बढ़कर सखी और कौन होईगा

दुनिया में ? उसका पाँव धोके भी पिए, तो विट्टल-पांडुरँग भगवान् का प्रसाद प्राएका माफ़िक !

बाबू भाई बोलता होता—“जो बीमारी औरत से अच्छा नहीं हुआ, उसे हकीम लुकमान भी अच्छा नहीं कर सकता ।”

हम बोला—“जिसको माँ-बहन सुखी नहीं कर सकता, उसे पांडुरँग भी सिकेली भाखरो, टुटेला लाड़ नहीं दे सकते !”

लेकिन अपन चमेली-सरीखी मैना को क्या बोले ?

कासम भाई को ठेंगा भी पता नहीं, यार !

वो तो आवखी जिंदगी-भर पोपट-का-पोपट ही रह गया ! कुरान का कसम खाके सच बोलिगा, तो क्या बाबा जी का ‘...’ काज्जी बनेगा ? हमरे को भी वह अपनाच-सरीखा पांडू समझता होता । केहता होता—“यार, गणपत भाऊ, चमेली की चालवाजी तुम-जैसा सयाना ही समझ सकता है !”

हम उसको बोला—“अरे, यार, अपन उड़ता पंछी का पांखी गिनता है ! क्या, बाई लोग को पत्ता दिखाने में, आई शपथ, हमेरा जबाब नहीं ।”

पण, मन-ही-मन बोला—“दोस्त, अपन क्या चमेली की खुशबू लेंगा, वो तो खुद हमरे जिगर को चूना-कत्था लगाके चालू पड़ गयेली है !”

अभो, क्या, कासम भाई को क्या ‘...’ खबर है—जभी चमेली उसकी आँखी पर चश्मा डाल के भिंडी बजार से टिकट कटाया था, तभी उस पर पेहला-पेहला कम्बल अपनच डाला था ! पण, हमरे घोंसले में भी बिना अंडा छोड़े ही, दाना-चारा चुगकर, वह जालिम

मैना फुर्र हो गई !...

मगर, दोस्त किसी से—कासम भाई से कहना नहीं ! वो यार समझेगा, हम दोस्ती में नीबू डाला है । और अपन को तो, यार, आक्खी मुंबई जानता है—दोस्ती में खटाई डालना, गू खाना—हम बरोबरच समझता है !...

तभी हम क्या बोला था, जभी हम पटेल के होटल के आगल, भोईवाड़े के नाके ऊपर खड़ा होता ?...बाई ग-ग-ग...हत्त तेरे '...' की, साला दिमाग में भी वरली के गटर का पानी भर गया है !—हम बोला था, भुलेश्वर मुंबई का जिगर है !...

अरे, वाहर से क्या घंटा मालूम पड़िगा ?

कासम भाई कहता था, “जिगर का खून हथेली पर नजर नहीं आता !”

कसम से, कासम भाई भी कभी एकच नक्की बात करता है ।

कोई अभी हमरे को बोले—अंदर का पोल-पट्टी, क्या, कभी बाहर नजर पड़ेगा ? भुलेश्वर कईसा^१-क्या है—हमरे से पूछो । हमरे कान से सुनो, हमेरी आंखी से देखो !...

कईसे फल-माला के अंदर देवी के चरराणों पर मोहब्बत के पैगाम रक्खे जाते—कैसे-कईसे सेठ लोग का दीकरीओ^२ भोईवाड़े से भुलेश्वर तक आते-आते चौपाटी-मलावार हिल घूमने के लिए काम-चलाऊ खसम ढूँढ लेते—क्या, कईसे-कैसे सेठ का घर से खजर-छाप दस्ती सरकते—हमरे से पूछो !

हमरे से—रामा गणपत से पूछो, क्या—सेठ लोग का घर में

जितना ही भाँडी घिसा होगा, उतना ही सेठानी लोग की बदौलत मजा भी मारा होगा !

तभीच हम बोलता है—मुंबई के अच्छे-अच्छे खानदानों के पेट अन्दर का नकशा देखने का होगा, तो भाँडी घसनेवाले रामा लोग से पूछो, बँगलों में रहनेवालों की हिस्टरी पूछो, गुरखा-पठान वाचमेन लोग से, कार का ड्राइवर लोग से !

सफेदपोशों के काले कारनामे को कोई क्या बोले ?

सफेद कुर्ता-धोती पहनते सभी लोग, परा दिल काले तखत के सभी के नहीं होते ! क्या ! अपन भूठ नहीं बोलिगा—भुलेश्वर में सैकड़ों आदमी अच्छा भी होईगा—सभी के बारे में क्या बोले ?...

लेकिन बोलिगा—आज हम रँगत में है—मजे में है—किस्सा बोलिगा एक-एक—मिर्ची के भजीया-सरीखा टेसदार—

शुरू करिगा किधर से ?

सूरज किधर से फूटता ?

हम किधर से आया ?

सातारा किधर—मुंबई किधर ?

उक्...उक्...उक्...

क्या लाला, इधर का गटर बास मारता है—

बास—हो-ओ-हो !...बास की बात पर अपनी सेठानी वसुन्धरा बाई का नाम याद आया । अभी किस्सा वसुन्धरा बाई से शुरू—

वोलो, गरापत बुआ—

जो-कुछ बोलिगा—विट्टल-पांडुरँग को साक्षी रखकेच बोलिगा !

विट्टल-पांडुरँग की शपथ...

अरे, विट्टल तो आला-आला मला भेटण्याला—काय टेसदार

लावनी है—

कभी हम परा ऐसेन्च भेटने को आया होता—

उक्...उक्...उक्...

अभी अपन को नींद डंडी मार रियेली^१ है !

अंटी में फकत चार आना है !

अभी सोईगा—सबेरे मस्का-ब्रून खाईगा—

अभी सोईगा—

ऐसेच, इधरच सोईगा—कौन साला बोलता इधर गटर है ?...

अरे, पोपट-पोंतरे, ये तो बादशाह जहाँगीर का तख्ते-ताऊस है—अपना सेख जवेर भाई का मुलायम गद्दी है—अपनी सेठानी वसुन्धरा बाई का मस्का का माफ़िक मुलायम, गुलाब का माफ़िक खुशबूदार जिसम है—

एक-एक ख्वाब ऐसा आईगा—

एक-एक किस्सा फिलम का माफ़िक आंखी-आगे, पिंजरा का कबूतर-माफ़िक, आईगा—आओ, बेगम !

जादूगर सैया—छोड़ो मेरो बैयाँ—

आओ बेगम, अभी सुबू को ही तुमेरा मजा छोड़िगा—

उक्...!

बेगम ...!!

उक्...!!!

बाई ...!!!!

रात चैताची भाते—

वाई...ग...ग...ग...ग...

उक्...!!!!

पंद्रह रुपए का मनीआर्डर था ।

गरापत ने आठ बार कलम उठाकर चार अक्षर लिखे । पूछा—
“गंगानी कुठे सही केली आहे, मास्तर ?”^१

फिर देर तक बुझी-बुझी आंखों से—‘दसखत करणार आणी
पैसे घेणार ‘गंगावाई’^२—को देखता रहा ! एक-एक अक्षर में उसे
गंगा की मासूम आकृति दिख रही थी—‘गंगावाई’; उसने कहा,
और आंखों पर हाथ रख लिए । मास्टर ने कहा—“तुमचा पत्र पण
आहे ।”

गरापत ने चिट्ठी खोला—

लिखा था—

“भया,

“तुम्हारे चरण छूती हूँ । तुम्हारा पत्र मिला । जानकर कि
तुम्हारी हालत सुधर रही है—खुशी हुई । पंद्रह रुपए भेज रही हूँ;
अब शायद और न भेज सकूँ । नौकरी छूट रही है ।

लौ मंद है, तूफान करीब है ।

काश, कि तुम्हें देख पाती ।

भगवान् विट्ठल तुम्हें सुखी रखें ।

“तुम्हारी अभागिन—गंगा !”

१. गंगा ने किधर हस्ताक्षर किए हैं, मस्टर । २. हस्ताक्षर करनेवाली
और रुपए लेनेवाली, गंगावाई ।

जब भादों की घटा घिरी थी—

तब माँ चली गई। गणपत को लगा, बादलों के उस पार कहीं ऐसी जगह, जहाँ हैजे की दवा मिल सके—गणपत के लिए। शायद, वहाँ वाले पूछें, हैजा क्या होता है? बिना देखे, दवा कैसे मिलेगी? इसलिए गणपत की माँ हैजे को अपने साथ, नमूने के तौर पर, ले गई थी !...

क्वॉर की एक कुमारी-संध्या को—

गंगा लमथरै की पगडंडी पर पुच्छल तारे-सी चलती रही। आज तक गणपत की पुतलियों में उसकी वही सूरत टिमटिमा रही है। पटेल का भानजा कहता था, पिछली चार-पाँच रातें उसने पटेल मामा के यहाँ गुजारी हैं—गणपत के मन में प्रश्न उठा था, तो क्या इस तरह भी औरत अपने भाई को जिंदगी बख्शती है?

गंगा चली गई थी, तो जैसे यह प्रश्न भी लमथरै की पगडंडी में विलीन हो गया।

डेढ़ महीने बाद, गंगा की बम्बई से चिट्ठी आई थी, कि वह अपनी आँखों से गणपत को तड़पते, दम तोड़ते कैसे देखती? बम्बई में वह कुशल से है। एक बंगले में नौकरी लग गई है—पहली आते ही, कुछ रुपए मनीआर्डर से भेज देगी।

तब से हर महीने दस-पंद्रह आते रहे।

गंगा की चिट्ठी भी आती रही—‘मुख से हैं, अपनी सेहत का ख्याल रखना।’

इस चिट्ठी से लगता था, आखिरी है। गणपत अब कुछ स्वस्थ हो चला था। पद्रह रुपए मुट्ठी में पड़े थे। मन में बहन के लिए प्यार भी था—चल पड़ा बम्बई को।

गंगा के पते को उसने ट्रेन में कई बार पढ़ा—

गंगा बाई...

चार

कमाठीपुरा तेरहवीं गली पहुँचने पर, गणपत को किसी साहब का वँगला न मिला ।

मुंबई शहर की महामाया देखकर, वह पहले ही भौंचक्का था । कमाठीपुरा की गलियाँ देखीं तो लगा—स्वर्ग होते-होते नरक के द्वार पर आ खड़ा हुआ है ।

कमाठीपुरे की एक-एक गली का किस्सा कहने के लिए पच्चीस वेंताल चाहिए—फिर कमाठीपुरे में तो चौदह—शायद इससे भी अधिक—गलियाँ हैं !

तेरहवीं गली के कोने वाले मोड़ पर, गणपत को वेगम-विला मिला । एक-दो की जगह, हर तरफ बेगमें-ही-बेगमें देखकर, गणपत की नजरें आड़ी-तिरछी हुई जा रही थीं । ठीक उसी तरह, जिस तरह वेगम-विला के रहमानी रेस्तराँ की कोख में बंठे गोरखपुरी पान-

वाला भैया की मूँछें—कत्थे-चूने की डंडी के साथ ऊपर-नीचे उठती हैं, दाँए-याँए भूलती है।

एक पान पूना मसाला लेते हुए, गणपत ने भैया जी से पूछा—
“इकड़े गंगा बाई कुठ राहतीत ?”

जबाव, बगल में खड़ी, मोटी घरवाली^१ कृष्णाबाई ने दिया—
“कुटची गंगाबाई, रे ? सातारा वाली काय ?”

“हा, बाई ! तो च ।” गणपत का मुख पुलकित हो उठा।

“कायग, त्याची गोष्ट काय विचारतो तू ? एक महिन्या पासून तोंडावर इत्र-फुलेल आणि ‘—’ मिहंदी लावून बसलेली आहे !”^२
और कृष्णाबाई पान की पीक ‘पिच्च’ थूकते हुए, ऊपर सीढ़ियों की ओर बढ़ गई।

गणपत बादशाह की ‘ट्रेल’ के नीचे गुलाम तक के ‘फ्लैश-सा’ दबा रह गया। लगा, कानों में किसी हलवाई ने जलेबी का ताजा, गरम बखर उड़ेल दिया है। बाँसों के भुरमुट में गिलहरी-सी—एक कँपकँपी-सी उसके मन-वन के भावना-बाँस-वृक्षों में सरक गई—गंगा बाई !

गणपत चेतना-शून्य-सा खड़ा ही था, कि भैया जी ने पूछा—
“गंगाबाई तुम्हारी क्या लगती थी ?”

प्रश्न से गणपत की अंतरात्मा काँप-सी उठी !

एक वेश्या को वह बहन कैसे कहे ?

क्षण-भर के लिए गंगा की वेश्यावृत्ति का घणित जीवन, एक

१. वेश्याओं की मालकिन। २. अरे, उसके बारे में क्या पूछता है ? एक महीने से मुँह में इत्र-फुलेल और ‘—’ में मेंहवी रचाए बैठी है।

विराट वीभत्स स्वप्न-सा, गणपत की आँखों में छा गया—उसने जमीन पर जोर से थूक दिया ।

भैया जी ने कहा—“इस पूरे बँगले में अस्सी-बयासी रांडें रहती हैं—पर गंगाबाई-जँसो मैंने कोई नहीं देखी । और जितनी भी हैं सब मुझसे मजाक करती हैं । कोई ‘क्या, भैया जी, हमारी—’ में चूना-कत्था कभी लगाएगा ?’ तो कोई ‘भैया जी, तुम्हारी सुपारी हमने बहुत खाई, हमारा पान तुम कभी खाओगे ?’ कोई ‘भैया जी, पटकती लेगा, चटकती ?’ कहती है—पर, गंगाबाई—वह मुझे ‘चाचा जी’ कहती रही है ।”

भैया जी का मन भारी हो आया था—एक बार कत्थे की लुटिया को चूने की डंडी से जोर से हिलाकर उन्होंने मूँछों पर कतरी सुपारी की एक कतरी अटकाली—“तुम्हारी क्या लगती है वो ? गजब की लड़की है । हर महीने पंद्रह-बीस रुपए घर को भेजती थी । मनीआर्डर मैं ही भरता था—कहती थी, ‘माँ के लिए भेजती हूँ’... बेचारी कैसे कहे, कि ‘भाई के लिए भेजती हूँ’...”

और एक तीखी दृष्टि गणपत के मुँह पर गड़ाकर, भैया जी बोले—“औरत, आखिर औरत होती है !”

गणपत के मुँह पर जूते पड़ते, तो शायद इतनी व्यथा, इतनी ग्लानि न होती उसे । भैया जी की ओर देखने का साहस वह न बटोर सका, बोला—“गंगा मेरे ही लिए पैसे भेजती थी । मुझे गाँव में हैजा हो गया था ।”

भैया जी बोले—“गंगा बेचारी एक महीने से गर्मी की बीमारी से तड़प रही है । बैसे भी औसत से ज्यादा ग्राहक पास लेने से उसका जिस्म टूट गया है । कली की तरह चटकने के दिन थे उसके, बासी फूल-

सी झड़ी जा रही है... ”

गरापत खामोश सुने जा रहा था—वह सोच रहा था, नारी को इतना महान् भी क्यों बनाया भगवान ने, कि पुरुष कभी भी उसके प्यार से उन्मृग न हो सके !

पुरुष जब गिरता है—चांडाल बन जाता है ।

नारी जब गिरती है—देवी ।

—क्योंकि पुरुष ‘पुरु’ हजार बार बनके भी, ‘पार्वती’ कभी न बन सका—न बन सकेगा !

° ° °

कौन साला बूम^१ मारता है ?

बूम किसका माफ़िक—?

वसुन्धरा बाई का...? नहीं, नहीं—जभी उसका साथ पेहले-पेहले सोया था, तभी वो बूम नहीं मारता था—सिसकारी भरता था !...जवेर भाई के साथ सोईगा, तो खाली करवट बदलता है ।

बेबी कालिन्दी को अभी क्या बोले—

पेहला फसल हमींच काटा था, पेहला दाना हमींच बोया था !—

सबूर करो, सुबू होने दो—

एक-एक का हिस्टरी बोलिगा, क्या !

साला बूम कौन मारता, रे ? हमेरा खाब टूट गया—

पण, खाब में हम क्या देखा था ?

हट बे, कुतरे,^२ परे हट...

क्या, साला कृष्णाबाई का माफ़िक...

गंगी...

बाई ग...

गंगी...बहिरण—

गणपत बेगम-विला की पहली सीढ़ी चढ़ा ही था, कि कृष्णाबाई की चीख सुनाई पड़ी—“हाय रे, दैवा ! काय करूँ मी आतां ?... ओ, भैया जी—ओ रे दगडू !...ओ, रे सखाराम !...ओ, धिथरी बाई...!”

गणपत ठिठक-सा गया ।

कृष्णाबाई की चीख-चिल्लाहट सुनकर अड़ौस-पड़ौस के भड्डुए, होटलों के वेटर सभी ऊपर को दौड़ पड़े—पीछे-पीछे गणपत भी दूसरी मंजिल पर जा पहुँचा—सामने गंगा की लाश पड़ी थी ।

अपने ही हाथों से फाँस मारकर, उसने अपने जीवन का अन्त कर लिया था । शायद, इसलिए कि, एक वेश्या के रूप में भाई से नजर मिलाने की ग्लानि से, मृत्यु को ही श्रेयस्कर समझा हो उसने ?

कृष्णाबाई बोली—“खिड़की के ऊपर से इसको देखा था इसने । घड़ी-भर देखती ही रही थी । मैं समझी थी, कोई ग्राहक है । मैंने कहा कि ‘—’ में तो मेंहदी रचा के बैठी है, बाप को कैसे लेगी ?... मैं क्या जानूँ, यह इसका कौन लड़िया है ?...क्या, भैया जी, इसका खसम तो नहीं है यह ?”

“यह तो भाई है इसका ।” भैया जी ने कहा ।

कृष्णाबाई को जैसे उबाल आ गया—“क्या रे, भाई होकर बहन की ‘—’ की कमाई खाता था ! अरे, दैवा, इस पोरी ने तो

कभी अपनी '—' को भी ढक्कन नहीं रखा !...कमा-कमा के भाई के पेट में भरती रही ! अरे, देवा—बोल, भैया जी...बोल रे, सखाराम !...बोलो, ईरानी सेठ—अब मैं कहाँ से इसकी मय्यत के लिए कफ़न-कुर्ता लाऊँ ?”

भैया जी ने देखा, गणपत मरे से भी बदहालत हो गया है । बोले—“कृष्णाबाई, चीखना-चिल्लाना पीछे; ज्यादा नखरे करेगी, तो तेरी ही '—' में कत्था-चूना लग जाएगा । कफ़न-कुर्ते के नाम पर रो रही है, पुलिस-केस हो जाएगा, लफड़े में पड़ जाएगी... '—' मुख, दोनों तरफ़ की कमाई मसाले में चली जाएगी !”

कृष्णाबाई की जवान में जैसे किसी ने गुड़ रख दिया हो । बोली—

“क्या बातें करते हो, भैया जी !...अरे, मैं तो अपनी सभी पोरी लोग को विटिया के सरीखी समझती हूँ । क्या, आखिर इन्हीं की कमाई का मैं भी खाती हूँ—कितना भी लगेगा, इन्कार थोड़े ही है !”

उस साँझ—

बम्बई का सूरज गणपत के आंसुओं में डूबा था !

पाँच

कोण है ? रशीदा, क्या ?

क्या बाई ग-ग...कासम भाई बोलता था—“शराब गम को, गम जिन्दगी को पीता है !”...अपन मरेंगा कईसे ? गम जिन्दगी को कईसे पिएँगा ? हम साला गम को पिएँगा !...

पैसा खीसे में नहीं—

भूठ बोलनेवाले की बहन की...

खामूस, साला, बहन का वास्ते गाली का लफज जुबान पर भी लाना नहीं ! क्या, नहीं तो साला तुमेरी अक्खी मुँबई का माँ-बहन को...

क्या साला हमेरी जबान को भी ‘—’ लग गया है—जो नहीं बोलने का, वोच हाथों के ‘—’ सरीखा पेहले मुँह पर आता है !...

चुप बे !...

रोता कौन है ? हम ? क्या, हमेरी आँख में आँसू ?

गधी की '—' से कभी हिना निकलती क्या ?

आँसू नहीं क्या—ये तो हम दारू पिया था, गटर में पड़ा था, कुतरा साला मुँह पर मूत गया !

रशीदा, यार भाऊ, थोड़ी-सी पिलादे—प्यारे ! पैसा क्या अभी अपने बाप का भी हम रखा है, जो अभी रखेगा ? क्या, यकीन न होए, तो—ले साला हमेरी गंजी गिरवी रख ले—ले, उतार देवे क्या ?...

ला, फिर ला, प्यारे—तेरा भी दिल दरिया, जिसम समन्दर है, यार !...पानी तो मिक्स नहीं किया ?...क्या, प्यारे, दोस्ती में पतला नहीं मूतना !...

उक्...!

उक्...!!

पिल हाऊस का टामफाटा किधर कूँ रेह गया—?

राँयल में क्या लगेला है—'नागिन !'

क्या, फिलमिस्तानी लोगों ने भी इंसानियत को डँसने के वास्ते एक-से-एक बड़के जहरीली नागिनों को पाला-पोसा है...

कभी-कभी अपन सोचता है, 'गरीबों की माँ-बहन के खून की लाली होंठों पर लगाए, गरीबों की माँ-बहन की अस्मत का पाउडर मुँह पर पोते ये पिशाचनें जब सड़कों पर निकलती हैं—सिनेमा-घर से—तभी माँ के '...' सभी इनकी '—' में मुँह डालने को कुतरे के माफिक दौड़ते हैं ।

कोण—?

सलाम ! सलाम दादा !...

उक्...!!!

क्या, अपन इस दादा का आक्खी जिन्दगी-भर शुक्रगुजार रहेगा ।
जभी हम मुम्बई में गधे की पूंछ के माफिक लटकता होता, तभी
येच दादा हमेरी जिन्दगानी को सहारा देके, सही-सलामत रखा...

क्या रागू दादा—खुश रहो प्यारे ।

तुमेरी वेगम को '—' का माफिक खूबसूरत '—' मिले !

रागू दादा सुन तो नहीं लिया ?

सुन भी लेंगा, तो अपना क्या उखाड़ेंगा ?

उक् !

कोण—? ...भागीरथी...?

उक्...!!!!

घाबरती काहे को, बाई ? अपन आज करिगा कुछ नहीं—क्या,
खाली लगाकर दो घड़ी सो जाईगा।—अरे, इधर कूं काहे कूं
सरकती, बाई ?—अपन कोई शैर थोड़े है ? रागू दादा से पूछ लेना
कल को—क्या !—अच्छा सबूर, जरा धोती हमेरे ऊपर भी
डाल दे—

उक्...!!!!!!

छः

पूस की रात भी चैत की रात से लम्बी होती है—जब पेट-भर खाना, चोंच-भर दाना नसीब नहीं होता ।

गणपत सोचता, कि मां गई, लौटकर न आई !

गंगा गई, लौटकर न आई !

तब ये रातें ही क्यों लौट-लौटकर आती हैं ? ये रातें—जिनमें नीचे बिस्तर, ऊपर चादर—बगल में औरत नहीं !

न बिस्तर, न चादर, न औरत—

और न रोटी !

कभी-कभी ऐसा लगता है, एक सिर्फ रोटी मिलती रहे—और कुछ भी नहीं, तो कोई हर्ज नहीं । पर, जब भी पेट-भर रोटी उपलब्ध हो जाती है—औरत की जरूरत महसूस होने लगती है कि काश यह मां के प्यार-भरे हाथों से होते हुए हम तक पहुँचती !—

काश, यह दाँत-कटी बनकर बहन के दाँतों तक पहुँचती !

अपनों की याद भी अब इसी बैरन रात-सी हो चली है । आती है, जाती है—जाती है, लौट-लौटकर आने के लिए ।

रात, रोज़ को तरह, उस रोज़ भी लौट आई थी...

पर, रोटी है, कि गणपत की माँ-सरोखी लौटती ही नहीं ।

माँ भी जिन्दगी देती है—

रोटी भी—

संभवतः, इसीलिए दोनों जाने पर वापस कभी नहीं लौटतीं !

फिर भी यह ध्रुव सत्य है, कि मरने से मुश्किल—जीने से आसान काम दुनिया में और कुछ नहीं है ।

◦

◦

◦

रात-भर की बेचैन करवटें आँखों में लादे, गणपत सुबह होटलों के चक्कर काटने चल दिया । एक होटल में जाकर पूछा—“सेठजी, नौकरी मिलेगी ?”

सेठजी पारसी थे ।

ऐनक तिरछी कर, बोले—“तू शू-शू^१ कामो करी शकीश ?”

गणपत जल्दी से बोला—‘सर्व काम करूँ सकते, सेठ ? पाणी भरायचा, प्लेट धोवायचा, भाँडी घासायचा...सर्वकाम, कायतरी काम...’^२

“शू, तू घाटी छे ?”

गणपत ने सिर हिला दिया ।

१. तू क्या-क्या काम कर सकता है ? २. सभी काम कर सकता हूँ, सेठ ! पानी भरने का, बर्तन घिसने का, प्लेटें धोने का—सभी काम, किसी प्रकार का भी काम...

“म्हारी सामे जोजे,”^१ सेठ जी बोले—“तने सवारे होटल नी सफाई करवी पड़शे, बपोरे ग्राहकों ने पाणी आपवान्को अने प्लेटो धोवानो—साँभे घेर ऊपर जावू पड़शे !...हूँ तने पधर रूपीया दर महीना ना हिसाबे आपीश...”^२

गरणपत कुछ समझा और चाहे न समझा—पर पंद्रह रुपए महीने की बात समझ गया—उसने सेठ को हाथ जोड़ दिए । पर, पंद्रह रुपए की बात पर उसे गंगा की याद आ गई—उसने भी तो आखिरी महीने में उसे पंद्रह रुपए का ही मनीआर्डर भेजा था ।

कुछ दिनों में ही गरणपत का मन पिलहाउस में रम गया । कभी-कभी वह बाहर के आर्डर का माल—सोडा-लेमन, चाय-बिस्कुट—आदि ले जाता, वेश्याओं के कोठे पर उनके ग्राहकों के लिए । वहीं उसने देखा, जिन्दगी का यह पहलू भी कितना रंगीन है । ऐसी-ऐसी बातें वहाँ होतीं, ऐसे-ऐसे दृश्य वहाँ देखने को मिलते कि गरणपत का मन-भुरंग थामे नहीं थमता ।

उसे इच्छा होती, उसे सेठ बस बाहर के आर्डर पर ही रखे । पर, होटल के प्रायः सभी नौकरों की यही महत्वाकांक्षा रहती—अस्तु, गरणपत को यदा-कदा ही यह स्वर्णावसर मिल पाता था ।

साँभ को गरणपत सेठ के घर कोलभाट स्ट्रीट पर चला जाता । वहाँ दोपहर के जमा बर्तन घिसता, भाड़ू देता—बच्चों-बूढ़ों के नहाने

१. मेरी ओर देख ।

२. सुबह तुम्हें होटल की सफाई करनी पड़ेगी । दोपहर को ग्राहकों को पानी देने और जूठी प्लेटें धोने का काम करना पड़ेगा और साँभ को घर का काम करने को जाना पड़ेगा । मैं तुम्हें पंद्रह रुपए महीना बेलन दूंगा ।

को पानी गरम करता—और रात को बरामदे में शतरंजी डालकर, चदरा ओढ़े सो जाता । उसकी आँखों में रात को पिलहाउस की रंगीनी ही छाई रहती—वह चाहता, काश कि वह भी, और नौकरों की तरह, वहीं सो पाता !

गणपत की सेठानी बड़ी बदसूरत थी—उसके ऊपर के तीन दाँत बाहर को निकले हुए थे—रात को तीन बार उठकर वह पेशाबघर जाती थी, और तीन ही टाईम उनका रसोइया 'भैया' भी कम्बल उघाड़ लेता था ...

काय बाई...

उक्...! धोती काहे कूँ उघाड़ दिया—कसम से, भागीरथी बाई, ऐसेच वो हमारा पारसी सेठानी भी एक दिन हमारा चदरा उघाड़ दिया था । वो 'भैया' था ना, क्या, वो अपने घर गया था— बनारस । क्या, लोग क्या बोलते, बनारस के लोग बड़े रसिया होते ! 'आक्खी जिन्दगी का रस ऊस' का रस का माफिक निचोड़ देते । उक्...!

तो क्या, हम बोलता था...रागू दादा भी एकच...पण, हम तो अपना सेठानी का बात कर रिया था—एक बात बोलेगा, भूठ बोलना, गू खाना हमारे लिए बरोबरच है—क्या, सेठानी हमारे को तर माल खिलाता था । ये-ये घी से तर आमलेट खाकूँ तो हमारे मुँह पर सुरैया का जैसा हुशन-जवानी चढ़ आया था ...एक महीना का पीछूँ, जब कभी हम दुकान के ऊपर जाता—होटल का छोकरा

लोग बोलते, “घर का खूराक लग गया है।”

कोई कहता—“सेठ लोग के घर में माल ही ऐसा मिलता है—पर, पीछे यह माल सेठ की बीबी ही वापस ले लेती है।”

कोई कहता—“अरे यार, तुम पूरे बम्बई के रामा लोग का देख लो, सबकी हड्डी ही बाहर दिखेगी—कुछ सेठानी चूस लेती है, कुछ सेठानी की छोकरियाँ—अंग्रेज मेमों के कुत्तों और बम्बई की सेठानियों के रामा लोग में कोई फर्क नहीं है।”

वहींच अपना कासम भाई, आडर ऊपर होता—वो कहता—“यार, गणपत बुआ, जिसम तो तुम्हारा सफरचंद-सरीखा^१ हो गया है। पर, दोस्त, सच-सच बताना—मैं तुम्हारा दोस्त हूँ—सेठानी तुम पर हाथ तो नहीं फेरती है?”

हम पाँडुरंग की शपथ खाके बोल दिया, कि अभी तक सेठानी हमेरी आई (माँ) सरीखी है। वो अपना बच्चा का माफिक हमेरे को पालती है।

पण, हमेरे को क्या पता था—सेठानी बच्चे पर ही मक्खन-वाला हाथ फिराएगी...

...कायग, बाई...हाथ ऐसेच रहने दे, करेगा कुछ नहीं हम। घाबर मत—घाबर मत बोले तो...

वो दिवस तो हम भी ऐसाच घाबर गया था, जभी सेठानी हमेरा कम्बल उधाड़ दिया। हम पूछा—“क्या काम है, बाई?”

वो होंठों पे अँगुली रख दिया—सी-ई-ई-ई...!

और हमेरी बगल में लेट गया।

हमेरी समझ में नहीं आया, काहेकू सेठानी इतना नरम बिस्तर और सेठ को छोड़कर—इधर, हमेरी बगल से चिटकता है ? हम सोचता होता, कि सेठ लोग के घर में भी कैसा-कईसा पोलपट्टी चलता है, कि उसने हमेरे गाल पर अपना तीन-का-तीन दाँत चिटका दिया—

उक्...!

हम तो, सच्ची बोलता है, घाबर गया—सेठानी का जिसम भी क्या बोले ! उसका एक-एक छाती बीस-बीस रतल का होगा, दो हाथ से थामे तो भी दबाने को नहीं होवे—हम तो घाबर के भाग गया—तभी हम शर्माता भी होता, सेठानी तो एकदम नंगाच हमेरे पास आया था !

बाईग, एक बात बोले क्या ?

उक्...!

सच्ची बोले, तो अगर सेठानी की जगह—सेठानी का वो चरमा-वाली छोकरी ऐसे रात को नंगा हमेरे पास सोने का आया होता, तो बिलकुल भी नहीं घाबरता—हम उसकू अपने जिसम से जोर से चिटका लेता...

कायग, अभी हम तुमेरे को जोर से दबा दिया तो 'उई-उई' काहे को करती, बाई ? तुमेरे को भी तो अच्छा लगता होईगा ? कासम भाई बोलता था—“मर्द के साथ सोने से औरत को भन्नत से भी ज्यादा मजा मिलता है, पर वह हमेशा यही जाहिर करने की कोशिश करती है, जैसे वह सिर्फ मर्द का खातिर सब-कुछ भेल रही हो।”

.. बाई लोग का दिलच ऐसा होता है !

अकेले तुमरे को क्या बोले ?

अच्छा, बाई, थोड़ी देरमेंच सुबू हो जाएगा—अभी ठंडो भी ज्यास्तीच लगा हमेरे को, तुमेरी धोती का गठन^१ खोल देवे तो तुम '—' तो नहीं मारिगा ? 'नहीं क्या 'सच्ची भागोरथी बाई, तुमेरे को भी पांडुरंग ने एकच दिल दिया है...

अच्छा, जरा हमेरी बाजू को मरक जाओ...

जरा इधर कं मुँह कर लो...

उक्...!!!

सात

उस दिन के बाद फिर उस पारसी सेठ के होटल में गणपत नहीं गया। तनख्वाह उसे उसी दिन सवेरे मिली थी। रात को वह रामभरोसे होटल के पाटिण पर सोया रहा। सवेरे वहाँ से उठकर चौपाटी की तरफ घूमने चल दिया। घूमते-घूमते मलाबार हिल की तरफ गया और वहीं बगीचे की एक बेंच पर सो गया।

जितनी देर आँख खुली रही, वह यही सोचता रहा कि जीने के लिए क्या किया जाए? उसके मन में यही खयाल उठता—‘अपन आजाद पंछी का माफिक रहे तो?’

आजाद पंछी की तरह रहने से उसका मतलब था, कोई ऐसी नौकरी करना जहाँ समय का—किसी और प्रकार का बंधन न हो। एक छोकरा बगीचे में ‘चम्पी !...चम्पी माजिश !...’ करता फिर रहा था। गणपत ने उसे करीब बुला लिया।

छोकरा जब सिर पर हाथ फिराने लग गया, तो गणपत ने पूछा—“कितना पैसा लेता है, रे ?”

“चार आने भी, आठ आने भी—रुपया भी—जैसे किसम की जितनी देर की मालिश होवे !”—छोकरा बोला ।

“एक रुपए वाली मालिश कैसी होती है, रे ?”

“तुम बुरा तो नहीं मानेगा ?”—छोकरा बोला ।

‘नहीं, रे !’

“एक रुपया वाली मालिश रात को होती है—सेठ लोग की । घर में औरत से मालिश कराने को ये लोग डरते हैं, क्योंकि औरत उन्हीं पर चढ़ बैठती है और इनसे कुछ बनता नहीं । इसलिए ये लोग इधर बगीचों में हमसे मालिश कराते हैं—और घर पर नौकर लोग सेठानियों के साथ सोते हैं !”

“ऐसा क्या, रे ?”

“नहीं तो क्या,”—छोकरा तेल छपछपाते हुए बोला—“गरीबों के लड़कों की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है ?...ईमानदारी से रोटी कमाने के रास्तों पर पत्थर रख दिए गए हैं । मेहनत-मजदूरी करने पर सूखी रोटी भी पेट-भर मयस्सर नहीं होती... ‘—’ मराके मक्खन-रोटी मिलती है !”

छोकरा चला गया, तो गणपत ने यह निश्चय कर लिया, कि वह भी ‘चम्पी मालिश’ का धंधा करेगा । छोकरा तो अब वह रह नहीं गया यों ! अट्टारह से ऊपर हो चली है—अब क्या कोई उस पर हाथ फिराएगा—दाढ़ी-मूँछ फूट गई है ।

साँझ को बगीचे से फिर चौपाटी की ओर चला आया गणपत । राँवसी में ‘शमशीर’ लगी थी—पोस्टर देख के गणपत का मन

ललचा गया । बम्बई आके उसने एक ही पिक्चर पिलहाउस के 'ताज' में देखी थी—अंग्रेजी पिक्चर—'सैमसन डिलायला'—उसमें दिखाए चुम्बनों के दृश्य उसके कलेजे में एक स्थायी गुदगुदी छोड़ गए थे ।

'अमशोर' देखकर, बाहर निकला तो उसकी आँखों में भानुमती ही तैर रही थी—उस मछली की तरह, जो दिखाई देती है, पर हाथ नहीं आती । गणपत सोच रहा था, कि काश, वह भी अशोक कुमार की तरह उसे अपनी बाँहों में भर पाता ? उसे ताज्जुब था, कि अशोककुमार ने उसे इतनी बार बाँहों में भरकर भी चूमा नहीं था ! वह सोचता, मैं होता तो ठीक सैमसन की माफिक इंग्लिश स्टाइल में चूमता ।

उगने निश्चय कर लिया, कि पिक्चर में पिक्चर तो अंग्रेजी—नौकरी में नौकरी तो पिलहाउस और कमाठीपुरा में, जहाँ बर्तन भी घिसने पड़ें, तो हूरो की महफिल आँखों के आगे हो ।

रास्ते में उसे कासम भाई मिल गया । बोला—“क्यों, गणपत बुआ, नौकरी काहे को छोड़ दी ?”

“ऐसेच,” गणपत बोला ।

“ऐसेच' क्या...अरे, गणपत भाई, मुझको भी इसी बम्बई में मूँछ के बाल जभे है ।’—कासम हँस दिया—“घर की नौकरी होती है ऐसी । गरीबों के लड़कों के लिए हर जगह गड्डे हैं, दोस्त । जूठे बर्तन भी घिसो दिन-भर, फिर रात को सेठों की बीवियों को भी सँभालो—जीमार गड़के मर जाओ, तो कुत्ता भी सूँघने को नहीं भेजेगा कोई !”

“अभी किधर कूँ जा रहे, कासम भाई ?”—गणपत ने पूछा ।

“मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक ।” —कामम हँस दिया—“चमेली के यहाँ जा रहा हूँ । चलेगा ? पर, तू तो ब्रह्मचारी है, बुध्रा । तेरे साथ चलके अपनी दाल फीकी कौन करे ? अच्छा, कल मिलना, क्या, मुझसे होटल में आकर !...सलाम !”

“सलाम !” गणपत बोला । सोचा, आज उसकी जेब में भी तो पैसे हैं । फिर क्यों न वह भी आज की रात किसी औरत के साथ बिताए । औरत के साथ सोने की हविश को वह एक मुद्दत से सीने में दबाए रहा है । आज वह दबा शोला भड़क उठा है—क्योंकि ‘चाँदो’ से ज्यादा दहकनेवाला अगारा ईश्वर ने और कोई नहीं बनाया ।

[फिर औरत के साथ सोने की हविश—एक सनातन हविश है ! बचपन में भी कोई पिता के पास सोना पसन्द नहीं करता । औरतें प्रसावेनी और प्रशयिनी—दोनों हैं । वात्सल्य देती हैं, माँ बनकर—कल्पनातीत रति-सुख देती हैं, ‘उर्वशी’ बनकर—फिर वह चाहे घर में पत्नी हो, या कोठे पर वेश्या—वह उर्वशी तो है ही—पुरुष की हर भूख को वृत्त करना उसका कार्य हो चला है, रहा है—तभी न जिस स्तन से दूध पिलाकर वह पलती है, उसी पर हाथ फिराकर काम-मुख प्राप्त करते पुरुष को वह रोकती नहीं—

औरत हर अवस्था में माँ है—माँ रहेगी !

पुरुष तो शिशु भी है और शैतान भी !

जब कनाडी ब्रिज से गणपत गुजरा, तो पवनपुल की खिड़कियों के पर्दे उठे हुए थे । सारंगियाँ बज रही थीं, तवले गमक रहे थे—और मजरे द्रो रद्रे थे ।

गणपत ने सोचा, गाना भी सुनेगा—और रात को गानेवाली के पास ही सो भी जाएगा । कोठे की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए, पैर ठिठके तो सही—पर गणपत ने दिल मजबूत कर लिया । अन्दर का दृश्य देखकर उसकी आँखें चुंधिया गई । मसनदों के सहारे बाबू लोग बैठे हैं, पान चबाए, सिगरेट दबाए और गानेवाली ठुमक के जभी पास आती है, तभी नोट हाथ में ले लेते हैं—गानेवाली जब नोट लेने आगे बढ़ती है, उसे चूमकर नोट हाथ में थमा देते हैं ।

(गणपत को खयाल आया, अंग्रेजी पिकचर देखने से भी ज्यादा बढ़िया तो यहाँ आना है । पर, वह सोच नहीं पा रहा था, कि पुरुष तो यहाँ दस-ग्यारह इकट्ठे हुए हैं, गानेवालियाँ हैं दो ही—इतने सब किसके साथ सोएँगे ?)

पर, तभी गाना खत्म हुआ और करीब-करीब सभी उठके दूसरे कमरों की ओर चल दिए । केवल एक आदमी रह गया और गणपत । गानेवाली ने आँखों से इशारा किया—गणपत मंत्र-मुग्ध-सा बैठ गया । तभी एक-दो सुननेवाले और आ गए ।

गानेवाली ने साजिन्दों की ओर इशारा किया और उसकी कमर लचक गई—‘हवा में उड़ता जाए...!’

‘मेरा लाल दुपट्टा मलमल का’—की टेक पर वह, सुननेवाले के सिर पर अपनी ओढ़नी रख देती और सुननेवाला इसी पर्दे में उसे चूम लेता—नोट थमा देता । गणपत को भी पारी आई । चूंदरी सिर पर पड़ते ही गणपत को ऐसा लगा, जैसे कोहकाफ की किसी परी ने अपने रेशमी ननों में उसे छुपा लिया हो । उसने गानेवाली को कसके छाती से चिपका लिया और सैमसन से भी ज्यादा कसकर उसके होंठों को चूमने लगा—साजिन्दा, घरवाली, सभी सुननेवाले

उन्हें देखते ही रह गए ! बड़ी मुश्किल से अपने को छुड़ा पाई गाने-वाली । वह शायद, गणपत को 'बदतमीज' या कुछ और कहती—पर उसकी मुट्टी में पूरे दस का नोट दबा हुआ था । वह इतना ह्री बोली—“बड़े हीरो हो !” और फिर उसके घुंघरू छमकने लगे ।

जब डान्स-गाना खतम हुआ, तो सभी उठकर चल दिए । गणपत सोचता रहा, शायद इन लोगों के साथ सुलाने के लिए औरतों का इन्तजाम दूसरे कमरों में किया गया है ! वह नहीं उठा, कि शायद यह गानेवाली उसके साथ सो जाए !

गानेवाली बोली—“उठो, बाबू, अभी क्या बैठे हो ? गाना अब नहीं होगा ।”

गणपत उठा, हिम्मत करके बोला—“अपन तो तुमेरे साथ सोएगा !”

गानेवाली बोली—“पचास रुपए हैं जेब में ?”

गणपत सकपका गया—“अभी और काहे को रुपया ? पिल-हाउस पर सात रुपया दिए, तो रात-भर सोने को मिलता है—तुमको तो हम तेरह रुपया दे दिया !”

“ये पिलहाउस नहीं—पवनपुल है !”—गानेवाली ने व्यंग्य किया—“यहाँ गाने का पैसा अलग—सोने का पैसा अलग लगता है, बाबू । पवनपुल की हिरोइनों के साथ सोने के लिए, हाथ-भर का कलेजा चाहिए !” और गणपत को बाहर कर, उसने दरवाजा बन्द कर लिया ..

आठ

कुछ दिनों में ही, गणपत मालिश करने में माहिर हो गया ।

पर, वह पिलहाउस और कमाठीपुरा के एरिया को छोड़कर बाहर नहीं जाता था । इन गलियों की, कोठों की—कोठों में रहने-वालियों की जिन्दगी का सारा कच्चा-पक्का चिट्ठा वह समझ-सीख चुका था । कुछ वह खुद सीख गया—कुछ उसके वस्ताद लंगड़े उस्मान ने सिखाया था ।

कुछ दिनों में ही वह हर गली-कूचे से वाकिफ हो गया ।

दिन-भर और दस बजे रात तक मालिश करके दो-ढाई रुपए कमा ही लेता । सवा रुपए में से चार आने का तेल खरीदता, दो पाकिट लालमहल सिगरेट और चार-पाँच पान लेता—बाकी पैसे खाने में खर्च करता । सवा रुपए में कभी कुलसुम के पास, कभी सईदन के पास सो जाता, घड़ी-भर के लिए ।

ये कुछ ही औरतें थीं, जो इतनी सस्ती थीं—नहीं तो दो से नीचे तो बम्बई में कोई बात ही नहीं करती । धीरे-धीरे गणपत कुलसुम के लिए ग्राहक भी पटाने लग गया । मालिश करते-करते, ग्राहक पटा लेता । एक दिन एक साहब बोले—“अच्छी से अच्छी चीज कहाँ मिलेगी, तू जानता है ?”

“अरे हम नहीं जानेगा क्या ? इधरच मूँछ-दाढ़ी का बाल आया है !”—गणपत शान से बोला ।

साहब बोले—“मूँछ-दाढ़ी तो तेरी अभी ठीक से नहीं आई, वेटे, अभी तो तेरी कच्ची उमर है ।”

‘कच्ची उमर’ कहने के साथ-साथ, साहब ने गणपत के गालों पर हाथ फेर दिया—“तू राजी होवे तो बोल, एक रुपया ऊपर से देगा !”

गणपत ने एक थप्पड़ दिया उसे—“अरे, अपना सिलवर जुबिली हो गया है, इधरच पिलहाउस—कमाठीपुरा में ! ऐसा क्यों नहीं बोलता, साला कि औरत का नहीं, लौंडों का पोपट है !... जा किसी पठान के पास चला जा !...”

नौ

उक्...!

भागीरथी बाई कभी उठके चला गया ?

अरे साला, हमारी आँखी भी एकच लगता है, अपनी ही टाँगी का तक हमरे को खबर नहीं रहता । ऐसेच एक दिन कुलसुम भी, हमरे पास से उठके, दूसरे के साथ सो गई होती—मेरे कूँ गुस्सा आ गया । हम उसको अपनी चारपाई पर खींच लाया—“तेरे बाप के पास क्या हमरे से ज्यादा चर्बी है ?”

पण, वो भी हमेरा गुरु निकला—सच बोले तो हमेरा बाप ही निकला ! उसका एक ही लाफे से हमेरी आँखी बन्द हो गया । पण दूसरी दफा हम भी साले को कबूतर-सरीखा दबा लिया—कसम से, उस दिन हम उसको खतमच कर डालता, कि कुलसुम साली ने हमरे हाथों पर जोर से दाँती काट दिया—हमरे हाथ में छूरे से

भी ज्यादा घाव हो गया। अँगुली का तो नस ही कट गया। पीछूँ उसके बाप ने हमकूँ मार-मार के हमारा दम खुसक कर दिया—
सुबू को नाली पर ही हमेरी आँख उघड़ी थी !...उक् !!

उक्...उक्...!!!

रागू दादा का एहसान अपन आक्खी जिन्दगी-भर नहीं भूलेगा। मार से हमेरा आक्खा जिसम काँदा भजीया' का माफिक हो गया होता। उस दिन खीसे से भी कड़का होता। हाथ दोनों जखमी होते—अपन सोचा, अभी बे-मौत मरेगा। अभी साला कमाया था—तभी माँ लोग का '—' में भर दिया—अभी साला हमेरा बुरा टैम आया, तो कोई हाथ में दवा के लिए मूत भी नहीं देगा। सोचता था, दुनिया में औरतच नहीं होना माँगता है—कासम भाई की चमेली, हमेरी सेठानी—वो पवनपुल पे गारणी गानेवाली और कुलसुम का माफिक हलकट—औरत होवे तो हमेरी गंगा-जैसी होवे...हमेरी माँ जैसी होवे—

क्या अपन भी कितना बदनसोब है !

कभी-कभी अपनी जिन्दगी के बारे में सोचे तो आँखी से खून निकलता। हमेरी तो साली आक्खी जिन्दगी का ही डिब्बा बज गया—क्या, कईसे-कईसे अरमान होते—पण, गरीबी ने सभी का बत्ती गुल कर दिया...

उक्...!!!!

पण सईदन का माफिक बाई लोग तो होनाच माँगता है। उसको हम बरूशीश का पावली भी नहीं देता होता। एक रुपया

देके दो घंटा उसका पास बैठता होता—दो दफे भी बैठे तो मने नहीं करती होती—अभी उसकी मेहरबानी का वास्ते क्या-क्या बोले !

जभी उसको खबर लग गया, कि हमेरा चम्पी बन गयेला है, बिस्तरे वर पड़ेला गुड़ खाता है, तो सईदन हमेरी पास आया—रागू दादा के घर में ! इन्सान को भी क्या बोले, रागू दादा हमारे साथ लाख नेकी किया—पर उसका बुराई भी हम आक्खी जिन्दगी-भर नहीं भूलेगा । सईदन को उसने बोल दिया—“मेरे साथ एक-एक टैम सोया करेगी, तो गणपत के पास आने दूंगा, नहीं तो ...”

सईदन का दिल भी एकच दिल । बोली—“गणपत के पास जाने के वास्ते, एक क्या—एक हजार टैम की शर्त भी कोई रखेगा, तो जब तक जिसम है, उसमें जाली नहीं चढ़ाऊँगी ।”

हमेरी आँखी में दर्द से तभी आँसू आ जाता होता—इस मुसलमान छोकरी ने माँ-वहन का माफिक, इतना बड़ा दिल किधर पाया होईगा ? पण, बोले तो क्या मुसलमान, क्या ईसाई—क्या पंजाबी—औरत का दिल आखिर औरत काच दिल है—पण एक-एक औरत तो डायन-सरोखी भी होतीच है ।

हमेरे शरीर में जान नहीं होता । पण, सईदन हमेरे से चिटक-चिटक के जैसे बिजली भर देती होती । हम सोचता, औरत हर हालत में मर्द को ताकत देती है—और हम उस कमजोरी की हालत में भी सईदन से प्यार-मोहब्बत कर लेता होता ।

सईदन की गाँठ का खाके, उसके साथ हम खूब मजा लिया—जितना कोई भी अपनी बीबी से ले सकता । क्या, हम सईदन का एहसान आक्खी जिन्दगी-भर नहीं भूलेंगा...

अपन तो हमेशाच बदनशीब रहा । क्या—गाँ हमरे को प्यार करती होती, चली गई—बहन प्यार करती होती, वो परा चली गई—सईदन हमरे को प्यार करती होती—वो परा...

अभी, रोईगा नही तो क्या करेगा ? आखिर हम भी तो इंसान है ? हमरे भी अरमान है—हम सोचता था, अच्छा हो जाईगा, तो सईदन से लगन कर कूँ, आक्खी जिन्दगी ईमानदारी से बिताएगा । मेहनत-मजदूरी करेगा, परा सईदन को रॉड नहीं रहने देगा । परा, इस मुँबई को—इस राज को क्या बोले—जहाँ हमेरी जिन्दगी का पाटियाच आउट हो गया !

सईदन हमरे वास्ते आठ-आठ आने में भी ग्राहोक सँभाल लेती होती—आखिर को बीमारी में सड़के खुदा को प्यारी हो गई...

हम सोचता है, गंगा और सईदन—दोनों खुदा के यहाँ एकच कमरे में होंगे—गंगा भी शरीर-जिसम को काँड़ी लगाके हमेरी जिन्दगी को रोगनी देता था—और सईदन ने भी अपना हाड़-माँस बेचकर हमरे को जिन्दगी बरूशी—

ऐसी माँ-बहन लोग का कदम-नी चूँका मिट्टी भी माथे से लगाए तो पाँडुरंग देवा के प्रसाद सरीखा है ! ..

उक्...!!!!

दस

सईदन के अवसान पर, गणपत उतने ही आँसू रोया, जितने गंगा के अवसान पर । उसके पास पाप-पुण्य की परिभाषा नहीं थी । सभ्यता के उस माप-दण्ड पर उसकी जिन्दगी कभी नहीं तुली थी, जिसमें अपनी बहन-बेटी को सोने-चाँदी से मढ़ने के लिए पूंजीपति लोग औरों की बहन-बेटियों का रक्त पीते हैं ।

तिलक-चन्दन धारण करने वाले, बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण करवानेवाले इन सेठों से कोई पूछे—प्याज-लहसुन से तक परहेज करनेवाले ये, अहिंसा के नाती-पोते ये—हजारों सीता-सावित्रियों का माँस कैसे खा लेते हैं ? हजारों माँ-बहिनों का रक्त कैसे पी जाते हैं ? हजारों-लाखों भाइयों के कलेजे कैसे चीर कर चबा लेते हैं ?

। ये शाकाहारी पूंजीपति—

रावण-कुंभकर्ण-कंस के इन वंशधरों को कोई क्या कहे ? रंडियाँ

जिन्हें कहते हैं ये—उनसे कहीं ज्यादा बेशरम हैं ये । रंडियों में बेबसी की बेशरमी होती है—मगर ये तो बेहया होते हैं, बेईमान होते हैं—पैसा—पैसा—पैसा—

{ केवल पैसा इनका ईमान है !
{ केवल पैसा इनका धर्म है !!
{ केवल पैसा इनका ईश्वर है !!!

ग्यारह

दिन बीतते गए ।

गणपत रागू दादा की कम्पनी में भर्ती होकर, शांताक्रूज—
कुरला—अंधेरी—कालीना से दारू की बोतलें लाने लगा शहर में ।

दिन-भर में दो ट्रिप भी कर लेता तो पाँच-छः रुपए बन जाते ।
चार-पाँच महोने में ही दो-ढाई सौ रुपए उसने जमा कर लिए । एक
दिन उसका मन हुआ, पवनपुल पर जाए—उसी गानेवाली के यहाँ चाहे
मचास ले, चाहे सौ—पर, रात-भर उसके जिसम से खेले जरूर ।
उसी ने कहा था—“पवनपुल की हीरोइनों के साथ सोने को हाथ-
भर का कलेजा चाहिए !”

पाँच-पाँच के पूरे बीस नोट लेकर, गणपत साँभू को पवनपुल
बला गया । उसी कमरे में गया—पर वह गानेवाली वहाँ नहीं
थी । एक बार चारों ओर नजर डालकर गणपत लौट गया । पर,

दरवाजे पर पहुँचते ही उसके मुँह से आश्चर्य की एक हलकी-सी चीख निकल गई—वही गानेवाली उसके सामने खड़ी थी !

पर, वह खूबसूरती, वह तेज मिजाजी—वे इशारे—सब न-जाने कहाँ चले गए थे । हड्डियों का एक ढाँचा था, जिस पर साँसों की विजली ज्यों-त्यों सरसरा रही थी । गणपत से न बना, कि सीधे चले जाए ।

वह बोली—“नहीं पहचाना, बाबू ?…” और वह आगे सरक-कर, एक छोटी-सी कोठड़ी के किवाड़ों के सहारे खड़ी हो गई । उसके कण्ठ-स्वर में इतना दर्द था, कि गणपत से न रहा गया । पास पहुँचा—“पहचान तो लिया था !” फिर उसका सोया अहम् जाग उठा—“पचास रुपए की बात जल्दी कैसे भूलेगा, कि पवनपुल की हिरोइनों को ‘—’ के लिए हाथ-भर का कलेजा चाहिए !”

वह आँखें फाड़कर देखती रह गई । फिर रो पड़ी—“आप नहीं मेरा बुरा वक्त बोल रहा है, बाबू ! खैर, उस दिन दो मिनट चूमने के १३ रुपए दे गए थे—आज दो घंटे तक चूम लो, दवा को तेरह आने ही दे देना !…मुँह अभी बदसूरत तो नहीं हुआ है न ? जिसम में जरा भी ताकत नहीं रही कि ग्राहक की मस्ती भेल सकूँ—फिर भी अभी अँधेरी गली में जाके एक रुपए में…”

और वह धाड़ मारकर रो पड़ी । उसका शरीर काँपने लगा—और वह किवाड़ों के सहारे-सहारे ही जमीन पर बैठ गई ।

गणपत उसे देखता ही रहा—क्या यह संभव नहीं, कि इसने भी गंगा की तरह अपने किसी भाई को जिन्दगी देने के लिए—अपनी जिन्दगी कुरबान की हो ?…क्या यह संभव नहीं कि सईदन की तरह और किसी के लिए बलिदान का पशु बनी हो ?

गणपत बोला—“कब से बीमार हो, बाई ?”

“तीन महीने से ।”—वह बोली—“नाचने से जो पैसा मिलता था, उसमें से बहुत थोड़ा मुझे मिलता था—घरवाली और भड़ुवे सारा पैसा हजम कर जाते थे । उधर मुलक में बाप बीमार था—माँ बीमार थी—छोटे भाई-बहन थे—कौन उनकी परवरिश करता ? ...इंसान को शैतान कभी नहीं जीत सकता । तवायफ हूँ, पर डायन नहीं । माँ-बाप भाई-बहन का प्यार मेरी जिन्दगी का भी सक्न है—”

वह रुकी, मैली धोती से आँसू पोंछे ।

गणपत खामोश ही रहा ।

वह बोली—“नाचने के पैसों से गुजर होनी मुश्किल थी, पूरे परिवार की । इसलिए चुपके से गलियों में उतरकर दोपहर को घूमने के बहाने होटलों में जाने लगी—बाबू लोगों के साथ । बाबू लोगों ने नोट के बण्डलों के साथ-साथ बीमारियों का बण्डल भी दिया—मैं कहीं की न रही । गर्मी हो गई । अब न नाच सकूँ, न ग्राहकों को जिसम ही दे सकूँ—घरवाली ने निकाल दिया । तब से इस कोठरी में पड़ी हूँ—दवा के पैसे कहाँ से आएँ, पेट को रोटी नहीं जुटा पा रही—आज बड़ी मुश्किल से नीचे उतरी थी—एक ग्राहक बड़ी मुश्किल से मिला । एक रुपया दिया उसने—एक-एक हड्डी अलग करके चला गया । सब मेरे पाप का फल है । उस बिचारे को भी तो अब गर्मी हो जाएगी ? ...मजबूरी भी कितने बड़े गुनाह करवाती है !!...”

गणपत बोला—“बड़े जुलम की बात है—अचरज की बात है—! इतने यार लोग तुम्हारे—भँवरा के माफिक तुमरे ऊपर

डोलता होता, रस चूस के चला गया, तो सूरत भी नहीं दिखाता कोई ?...क्या, बाई, तुमेरी हिस्टरी बड़ी पुग्दद है ! क्या—हमेराच माफिक ! ..तुमेरे को कोई मदत नहीं करता ?”

सहानुभूति पाकर, उमका स्वर सबल हो उठा—“मदद ? मजबूरों की मदद तो भगवान भी नहीं करता—इंसान क्या करेगा ? कभी मेरे इशारों पर नोट वँटते थे, आज गाठ-वारा आने को भी कोई मेरा भाव नहीं पूछता ! जिसम खरीदकर पैसा देनेवाले बहुत हैं, पर एक मजबूर लड़की को अपनी वहन-सा मानकर एक रोटी देना भी किसी को कबूल नहीं ! वहन के नाम पर, सुना था, लोग बड़ी-बड़ी कुरबानियाँ कर गए हैं—पर, अब तो जैसे वहन के प्यार की कीमत ही नहीं रही ।” किसी को ‘भाई’ कहती हूँ, तो शूकता है मुझ पर—‘कल तक मुझी से ‘—’ रही, अभी बाप काहे को वनाती है ! ...’.....”

गरापत को लगा—यह नहीं, गंगा बोल रही है—सईदन बोल रही है—हिंदुस्तान की हर मजबूर, दुखियारी वहन बोल रही है—

गरापत ने उसे बाँहों में भर लिया—

चूम लिया—

माथे के सुखे-बिखरे केशों को ।

कमला गरापत के लिए गंगा हो गई । गंगा की पवित्र धारा में स्नान करने से वही मन पवित्र होता है, जो पवित्रता की कामना लिए डुबकी लगाता है । जो हजार पाप लिए डुबकी लगाए, उसका मन क्या पवित्र हो ?...

वहन का प्यार भी भागीरथी का निर्मल जल है—कोई उस

प्यार को आस्था के साथ अपनी स्नेहांजलि में ले—‘नमो भगिनिः’ कह सके तो ।...’

गणपत ने कमला का इलाज करवाना शुरू कर दिया था । सारे पैसे लाके उसने कमला को दे दिए थे । कमला स्वस्थ हो रही थी— गणपत दारू की बोतलें सप्लाई करते हुए भी पुण्य-लाभ कर रहा था ।

और एक दिन कमला ने कहा—“भैया, तुम्हारे उपकार जीवन-भर न भूलूंगी ।”—और उसने गणपत के चरणों में आंसुओं का अर्घ्य चढ़ा दिया—गणपत को लगा था, शिव के तो जटा में समाई थीं गंगा, पर उसके चरणों में समा गई हैं !...’

कुछ दिनों के बाद कमला ने बताया, कि उसका मन माँ-बाप से मिलने को, भाई-बहन से मिलने को छटपटाता है । गणपत को उसके विछोह की कल्पना-मात्र से वेदना होने लगी, पर आखिर उसने कमला को स्टेशन तक स्वयं पहुँचा दिया—

उस दिन,

गणपत को लगा,

स्वर्ग से एक गंगा आई थी, अब तक बह रही है—

मेरे जीवन में—

दो गंगाएँ बहीं—

पर, रही एक भी नहीं !

कितना बदनसीब है मैं !

बारह

एक बार फिर गणपत की जिन्दगी बिना शाक की रोटी-सी बन गई; बिना रुन्धुन के धुँधरू-सा मन जब भी खनका—रुला-रुला गया ।

कासम ने उसे गम की दवा चखाई—

और सचमुच वह दवा गणपत की इंसानियत को चट कर गई । अब उसके दिल में यही हविश बनी रहती—सोने को औरत हो, खाने को बिरयानी—और देखने को अंग्रेजी पिक्चर !

दारू के धंधे में बार-बार पकड़े जाने का खतरा था । फिर महीनों जेल में सड़ना पड़ता, पुलिस मारती सो अलग—आखिर गणपत ने निश्चय किया, किसी सेठ के घर में नौकरी करेगा । बर्तन घिसने पड़ेंगे तो क्या हुआ, तर खाना, मुलायम बिछौना तो मिलेगा ?...

उसने सुना था, सेठानियाँ ज्यादातर भुलेश्वर के पासवाले मंदिर में पूजा के लिए आती हैं; उनमें जो सेठानी रामा चाहती है, मन-पसन्द मिल जाने पर साथ ले जाती है।

अब गणपत सिर में चकाचक तेल डालता। हर दिन दाढ़ी बनाता, गले के बटन खुले रखता, कि छाती के घने-काले बाल दिखाई देते रहे। कोई सेठानी कभी उसे देखती यदा-कदा, तो बाँईं आँख दबा देता। पर, उसके इस सिगनल के 'डाउन' होने से—कोई भी 'ट्रेन' उसकी जिन्दगी की पटरी पर नहीं रुकी थी !

पर, कह रखा है—जहाँ चाह, वहाँ राह !

एक दिन—

चौपाटी के सागर में सूर्य स्नान कर रहा था—

तब—

गणपत के भाग्य का सूर्योदय हुआ।

भुलेश्वर के नामी-गिरामी सेठ नगीनभाई की सेठानी ने,

पूजा के थाल के नीचे,

गणपत के हाथ को भीड़-छँटने तक दबाए रखा...

तेरह

सेठानियाँ

उक्...

बाई का हाथ क्या होता, बसई का केला !

बाई का अँगुली को क्या बोले, पानी का बौम्बल (मच्छली) का माफिक हाथ से सरकती होती । बाई का आँखी को क्या बोले, कबूतर का माफिक—पंछी का माफिक ! देसाई बाबू का दीकरी के आँखी-बाबत हम शुरू मेंच बोला होता—ऐसाच !

तुमेरे लोग वसंती बाई को क्या घंटा पहचानेंगा ?

इसीच वसुन्धरा बाई का दीकरी !...

वसुन्धरा उसका आई—पण, बोले तो उसका बाप कोण ?

येच बात अभी तक कबूतर का '—' का माफिक दाबेला है—

खुदा कसम, तुमेरे लोग कभी भी, क्या, वसुन्धरा बाई से जाकं पूछो, कि वसंती बेन किसका नमूना, किसका चिराग है !...

तुमरे लोग बोलेगा—गणपत रामा हलकट है, दूसरे का तोंड^१ में लात मारता है, डोंके^२ ऊपर काँड़ी^३ लगाता है !—पर, हमेरा भी तो कोई खुदा होवे, जिससे कोई पूछे, कि हमेरे जिगर का रगड़ा^४ किसने बनाया ? हमेरे जिगर-जिगर पर, जिसम-जिसम पर, जखम-जखम पर—किसने कबूतर का माफिक हग दिया ? किसने हमेरे अरमानों को लाल भंडी दिखाया ? किसने हमारी आक्खी जिन्दगी का पाटिया आउट कर दिया ?

भाई लोग, आप हमेरे आई-बाप-सरीखा है, हम कोई गलत बात बोलिगा, तो हमेरे मुँह पर गिन-गिन के जूती मारो ! क्या, अपन भी खानदानी मराठा है, हलकट बात मुँह से क्या '—' से भी नहीं बोलिगा ! अभी आप सब लोग का मर्जी होवे, तो अपन सेठ लोग की '—' का गू भी '—' मेंच रहने देगा !

पण, काहे कू ?

अपन क्या आप लोग के बाप का नौकर है ? तुमरे लोग को, समझे क्या, जो-कुछ मेहरबानी करने का होईगा, अपना जोरू का पेटीकोट में भरके सीलबन्द कर लेना ! क्या, पण अपन तो कबूतर लोग का पोल-पट्टी खोलिगाच !...

भाई लोग, आप हमेरे लिए पाँडुरंग-सरीखा है । आप लोग का वास्ते एक भी जबान हलकट निकले, तो, क्या, हमेरा जबान खींच लेना, पण आप लोगच बोलो, जरूम सडिगा, तो बास नहीं मारेगा ? हमेरी जिन्दगी भी अलाबाद का पीरू^५ का माफिक सड़ गया है, अभी तुमरे लोग को बदबू आता होवे, तो क्या आप लोग हमेरा

१. मुँह । २. सिर । ३. बियासलाई की तिल्ली । ४. छोला ।

५. इलाहाबाद का अमरूद ।

‘—’ उखाड़ेगा ? अरे, माऊड़^१ का माफिक आंखी किसो और को दिखाना ! क्या, गणपत रामा अपनी जोरू से भी कभी नहीं डरिगा ! क्या, सईंदन अपने को प्यार कूं आके ‘घाटी’ बोला था एक दिन हम उसको एक लप्पड़ दिया, कि ‘घाटी होईगा हमेरा बाप !’...

अभी, क्या, अपन को गुस्सा नहीं दिलाना !...

देसाई बाबू से पूछे कोई कि हम कैसा पोपट-सरीखा जबाब देता है ! देसाई बाबू अपना गद्दी-ऊपर शेर का सरीखा गुरं करता है, हमेरे से गोदड़ का माफिक घाबरता है ! अभी कोई बोले, देसाई बाबू हमेरा धनी, हम उसका नौकर—वो काहे कूं हमेरे से घाबरता ? धनी काहे कूं नौकर से घाबरता !...

इसीकोच कबूतर का पांखी बोलते !

इसीकोच कोंबडी^२ का आंखी बोलते !

—बोले तो, अपनी आई का कसम खाके—अपन कोई पीर-फकीर तो है नहीं, पण आंखी से देखा—कानों से सुना—वोच^३ आप लोग से भी बोलिगा । क्या, गू जब तक पेट का अन्दर रहता है—बास नहीं मारता ! सेठ लोग का पोल-पट्टी भी अभी पेट-अन्दर का गू है, जभी बाहर निकलेगा, तो आप लोग को रास्ता ऊपर चलने को भी भारी पड़िगा !

अभी आप लोग समजता होईगा—गणपत रामा का मगज फिर गया है, तभीच दूसरे लोग को कोलतार लगाता है ! पण, आप लोग हमेरे बाप का सरीखा है, आप से झूठ बोलिगा, वरली के गटर^४ में सड़िगा ! हमेरा भी माँ-बहन था, दूसरे लोग का माँ-

१. बन्दर । २. मुर्गी । ३. वही । ४. गड्ढे ।

बहन का वास्ते हम बुरी नजर उठाईगा, तो हमारी आँखी में बाबा जी का घंटा पड़िगा !

हमेरे पहेलू में भी दिल है, साहिब !...

येच भुलेश्वर में जितना बाई लोग हमेरे को 'गणपत भाऊ'^१ करके बूम^२ मारा होईगा, हमेरी निगे^३ में वो बाई लोग हमेरी गंगा से भी ज्यास्तीच रहा होईगा ।

आप लोग हमेरे को हलकट समझा क्या ?

कभी इधर कूँ आके हमेरे जिगर कूँ भी आजमा के देखो !...

हमेरे को 'भाऊ' बोल के, हमेरी आक्खी जिन्दगी को भी आप लोग चूना लगा के जाईगा, तो अपन शिकैत^४ करना, पेशाब पीना बरोबरच समझिगा !

पण, आज जो-कुछ भी हम बोलता है, हमेरा टूटेला-फूटेला दिल बोलता है । हमेरी आई, हमेरी बहन बोलता है, सईदन बोलता है, साहिब—कमला बहन बोलता है ! गणपत रामा-सरीखा दरेक गरीब माणूस का माँ-बहन का आत्मा बोलता है । ये हमारा जस्मे-जिगर बोलता है—

लख्ते-जिगर बोलता है—

कासम भाई भी एकच पोपट है, हमेरे को लख्ते-जिगर कहता है ! हमको भी, साले की ऐसी-तैसी, कैसा गम—कैसा फिकर ? ऐसेच जिन्दगी सेठ लोग का पोट^५-सरीखा भारी है, ऊपर से गम-फिकर भरिगा तो, मरिगा—बे-मौत मरिगा !

किसका माफिक—?

१. भैया । २. आवाज । ३. निगाह । ४. शिकायत । ५. पेट ।

करसन भाई सेठ का माफिक !

करसन भाई सेठ का माफिक बोले, तो कैसे ?

पोलिस लोग को करसन भाई की बायको^१ ने क्या चौपाटी का दरिया बताया—“हूँ सवारे चहा तयार करवा माटे स्टोव बालती हती, त्यारेज ऐगो म्हारे साथे टिंगल करी हती । टिंगल-टिंगल माज स्टोव ऊँधो थई गयो, तेथी ऐना कापडो सलगी गया हता ! हूँ हवेसूँ करूँ, मारी तकदीर नो पाटियो तो ऊँधों थई गयो छे !”^२

पण, आप लोग सच्ची हिस्टरी हमेरे से पूछो !

हमेरे को कहाँ से सुराग लगा ?

अरे, अपन उड़ता कबूतर का पाँखी गिनेगा, क्या ! आक्खा जिन्दगी सेठ लोक का भूठा-भाँडी^३ घसने में कोंबडी का अंडा-सरीखा फूट गयेला ! अपना जिगरी दोस्त पटवर्द्धन सेठ करसन भाई के घर रामा होता—उसी सेच सारा हिस्टरी हमेरे को मालूम हुआ ।

पटवर्द्धन बोलता था—“पहेला अपन ऐसा जोखिम का काम करने को तैयार नहीं था, पण, पीछूँ, यार, अपना भी नियत खराब हो गया । तुमकूँ तो माहिती^४ है, गणपत भाऊ ! अपना बाई कैसा हिरोइन का माफिक हुसनदार है ! फिर, बोल प्यारे, औरत के हुसन के आगे विश्वामित्र-सरीखा तपस्याचारी का दिल पण फिसल गया, तो हमेरे-सरीखा भुक्कड़ भाई क्या पवित्तर रह सकिगा ?”

१. पत्नी । २. मैं सुबह चाय बनाने के लिए, स्टोव सुलगा रही थी कि उस समय ‘उन्होंने’ आकर मुझ से छेड़ाखानी करनी शुरू की । छेड़ाखानी—हास-परिहास—में ही स्टोव उलट जाने से उनके कपड़ों को आग लग गई । मैं अभागिन अब क्या करूँ ? मेरे भाग्य की तो तस्ती ही उलट गई है ! ३. बरतप । ४. जानकारी

हमने पूछा—“काय, रे पटवर्द्धन ! क्या-क्या बोला था तुमरे को बाई ? काहे कूँ सेठ की जिन्दगी को लाल बावटा^१ दिखाया था ?”

पटवर्द्धन भी एकच पोपट है । जिगरी दोस्त । बोले तो, फांसी पर चमगादड़-सरीखा^२ लटक जाईगा, परा अपना दोस्त लोग से पोल-पट्टी की बात कभी नहीं छुपाईगा । अपन से तो वह और भी तोंड का पान-सरीखा रहता था । काहे कूँ बोले, तो अपन भी उसको एक-से-एक टेसदार हिस्टरी बोलता है—सिनेमा के पर्दे पर, बोले तो, किसी का आई-बाप ने भी ऐसा टेसदार किस्सा नहीं देखा-सुना होईगा !

क्या, अपन भी मूँछ का बाल ‘—’ को, ‘--’ का बाल सिर को ले जाता है ! बात चलाया था, पटवर्द्धन का—क्या, बात-बातमेंच कुरला से कांदीवली चला गया ।

दारू का नशा भी काँग्रेस सरकार ने एकच बंद करवाया ।

आन्खी^३ मुंबई^४ में, बोले तो, पाव रतल^५ दारू रखे, तो पन्नास^६ का जूना डोंका ऊपर पड़ता है । तीन महीने के वास्ते शाम-सुबू सवा राए का काँदा भजोया, ऊपल-पाव खिलाईगा—घर-जमाई का माफिक ।

अभी आप लोगच बोलो, क्या हम दारू पिईगा—क्या नशा करिगा ? काँग्रेस सरकार का राज में दारू अमृत-सरीखा दुर्लभ हो गयेला । सूँघने को भी सपना हो गयेला ।

परा, बोले तो, आप लोग हमेरे कोच बदमाश बोलिगा !

येच मुंबई में सरकार काच लीडर लोग दारू बनवाता है ।

१. लाल भंडी । २. जैसा । ३. पूरी । ४. बम्बई । ५. दो छटाँक ।

बिल्डिंग की सीढ़ियों के नीचूँ तक ये लोग भट्टी बनवाते ! क्या, 'खुद डैमिस, खुद पोलिस' वाली गोस्ट^१ है—खुद चोर, खुद साहूकार ! अभी लीडर लोग का घर में पोलिस लोग पण तलाशी लेने को नहीं सकते—पकड़िगा कौन ?

नहीं तो आप लोगच बोलो, क्या, आजादी मिले कूँ १० साल भी नहीं हुआ, पण जिस लीडर का घर में उँदीर (चूहा) का खाने को दाना नहीं, भीख मागने कूँ भी थैला नहीं—बोच आज, मुंबई सरीखा शहर में, चार-चार, पाँच-पाँच बिल्डिंग का धनी^२ है ! उसकेच आगे-पीछूँ पन्नास-पन्नास हजार का कार घूमते ! मोठे-मोठे^३ बैंकों में उसीकेच लाखों रुपए !

—अपना छाती, अपना आन-आँलाद का सिर ऊपर हाथ रखके कोई लीडर बोले, कि कइसे-कइसे गुनाहों की बदौलत घास-पात का माफिक दौलत इकट्ठा कियेला है ! बोले तो, आक्खा हिन्दुस्तान का लीडर लोग का हाथ में गऊ का पूँछ पकड़ाकूँ कोई पूछे, क्या, रुपया पीछूँ पंधर^४ आना हराम का कमाई है या नहीं ?

पण, अपन को क्या करना किसी से ?

अपन किसी को बुरा क्या बोले ? अपन सबको आई-बाप-सारीखा समझता है । तीन-चार टाइम भाँडी घसता है, सेठ लोग को पोरी-पोरे को शाला^५ पहुँचाता है—आक्खा दिवस खून को पानी बनाकूँ, पीछूँ—पोट^६ भर दाना, '—' ढंकनेकूँ कापड़ नशीब होता है । ये दूसरी गोष्ट है, कि सेठानी का मेहरबानी हो गया तो तर

१. बात । २. मालिक । ३. बड़े-बड़े । ४. पंद्रह । ५. पाठशाला । ६. पेट ।

माल दवाने को मिलता है, पेट का वास्ते भी, '—' का वास्ते भी !

अभी, बोले तो, हँसी आता है मेरे कूँ ! आप लोग बोलेंगा, गणपत बुआ बेशरम है । क्या, अपन आप लोगों काच लिहाज करकूँ '—' का गू '—' में रख लेता है । परण, अपन दूसरे कूँ कैसे कुछ बोलेगा ?

पटवर्द्धन क्या बोलता था, वो जाने । आप लोग मेरे कूँ कुछ मत बोलना । वो पटवर्द्धन परण एक च जासूस !.....

बोलता था—“हम सेठानी को बोला था, 'कच्चा घड़ा डोंका-ऊपर' रखेंगा, तो बीच बाजार में चोली-घाघरा भिजाईगा ।' परण, सेठानी हमरे कूँ क्या जवाब दिया, 'औरत का चोली-घाघरा जभी भीगता है, वह और खूबसूरत दिखाई देती है !' बोले तो, बात तो सेठानी लाखका बोला था ! पीछूँ हम क्या करता, गणपत बुआ ?— शपथ पाँडुरंगा ची, यार, बाई लोग का दिल भी अईसा पत्थर का सारीखा होने को—त्रोच दिन हमरे को माहिती पड़ा ! तारु^१ का अन्दर मिकस करके जो जानमारू फंकी दिया है—सुबू तक तो सेठ बासी पोरू-सरीखा^२ हो गया ! पीछूँ सेठानी ने हमरे से तेल छड़-काया—स्टोव सुलगाया—अभी क्या बोले, बाई को चंडी-सरीखा देखकूँ अपन तो घाबर के चौपाटी भाग गया । पीछूँ सेठानी बोला हमरे को, “तुम किधर चले गया था । इधर पुलिस पूछ-ताछ कर रही थी । मैंने कह दिया है, 'पटवर्द्धन कल ही रजा^३ ऊपर गया है ।' अभी आगे कोई पूछेगा, तो ऐसा ही कहना !”.....सेठानी का दिमाग भी कितना हाई कलास ! सेठ को आधे से ज्यादा जला

दिया, घर को थोड़ाच आगी लगा ! बाई का दिल भी एकच—
अपना जिसमकूँ भी जला लिया, ताकि पीछूँ किसी कूँ शक-शुबहा
नहीं होवे !.....”

हम पटवर्द्धन का हिस्टरी सीलोन रेडियो का माफिक सुनता
रहा ।

वो पोपट-सरीखा बोलता रहा—“महोना-भर हम बाई के
आँड^१ को वैसलीन-मलम लगाता रहा । एक दिन हमेरे से नहीं रहा
गया । बोला, क्या—‘बाई तुमेरे जिसम में तमाम जखम हो गयेला
है ! बड़ा तकलीफ होता होईगा !’ अभी तेरेकूँ क्या बोले, यार,
बाई हमेरे को बोला—‘पटवर्द्धन, जिसम में जितने भी घाव हुए हैं,
एकाध महीने में भर जाएँगे । दर्द जितना है, घावों के भरते ही थम
जाएगा—पर, तेरे सेठ ने मेरे दिल को जो घाव लगाए वो क्या इस
जनम में भरेंगे ? उनका दर्द कभी चैन लेने देगा मुझे ?’ और बाई
तो हमेरी छाती से अपना सिर लगाके रड़ने^२ लगा, रे ! लहान मुली
सरीखा^३ !”

अभी लोग पूछेगा, काहेकूँ पटवर्द्धन का बाई रड़ता था ? काहेकूँ
उसने अपने धनी^४ की जिन्दगी का पाटिया आउट किया ? काहेकूँ
उसने पटवर्द्धन से साँठ-गाँठ लगाया ?

ऐसे-ऐसे बाई लोग का हिस्टरी को कोई क्या बोले ?

पटवर्द्धन हमको बताया था—

उसका बाई यशोदाबेन का हिस्टरी ।

हिस्टरी को अभी क्या बोले ?

हिस्टरी बोले, सो पोल-पट्टी !.....

१. शरीर । २. रोने । ३. छोटी-सी बच्ची की तरह । ४. पति ।

चौदह

भुलेश्वर के मन्दिर के सामने से होती हुई, जो गली निकली है, वह विट्टलभाई पटेल रोड की छाती से चिपक जाती है; दोनों के संयोग से खेतवाड़ी मेनरोड का जन्म हुआ, जो न्यू चर्ची रोड को काटके त्रिभुवन रोड कहलाता है—जैसे दारा का सिर काटके औरंगजेब बादशाह बना था ।

पर, त्रिभुवन रोड औरंगजेब की तरह कट्टर धर्म-पंथी नहीं है । जिस बम्बई में महाराष्ट्र-गुजरात, अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए, रक्तार्चन के लिए दीप-बाती लिए प्रस्तुत रहते हैं—उसी बम्बई में महाराष्ट्रीयन ललनाओं और गुजराती रसिकों की केलि-स्थली है, यही त्रिभुवन रोड ।

इसी त्रिभुवन रोड में साधूश्रेष्ठ गाइगे महाराज का प्रचार-कार्यालय है, मासिक 'जनता-जनादन' का कार्यालय है, और इसी

त्रिभुवन रोड पर नागप्पा-शेषप्पा का वारांगना-आवास भी है, जहाँ 'ऊँचे-ऊँचे रेट' की प्राइवेट वारांगनाएँ रहती हैं ।

इसी त्रिभुवन रोड पर सुप्रसिद्ध ड्यूक कम्पनी है, जिसके शीतल-पेय-निर्माण कारखाने में; ड्राइवर और चपरासी तक आवारा-लावा-रिश-सी दानून वालियों की उर्वरा मातृ-सत्ता पर शासन करके फुटपाथों की आवादी बढ़ाते हैं ।

इसी त्रिभुवन रोड और इसकी मौमेरी वहन पाव वाला स्ट्रीट में कई हिरोइनें एकसट्टा बनते-बनते पेन्शन पर आ गई हैं अब और ढलती उमर में तन का सौदा करके रोटियाँ जुटा रही हैं । इसी त्रिभुवन रोड पर—पक्खन की टिकियों-सी पारसी लड़कियाँ भी हैं, जिनका अधिकांश समय साड़ी-सेंडिल और 'व्यॉय फ्रण्ड' के चुनाव में बीतता है, और भाई-बाप मुर्गी के अण्डे, शहद और चन्दन की लकड़ी लेकर पारसी-टेम्पलों के आगे बंटे रहते हैं ।

इसी त्रिभुवन रोड पर कई ऐसे गृहस्थ रहते हैं, जो जवानी ढल जाने पर ही बेटियों को ब्याह करने की अनुमति देते हैं, क्योंकि जवानी के दौर में किसी गजटेड सरकारी अफसर से भी कहीं ज्यादा तनख्वाह वे घर पर ही पाती हैं ।

ये गृहस्थ धनोपार्जन के लिए अपनी बहुओं और बेटियों को काँदीवली, गोरे गाँव, मलाड—अँधेरी तक कारवाले सेठों के साथ भेज देते हैं । वे जब लौटकर आती हैं, तो नई साड़ी और नई कमाई लेकर.....

त्रिभुवन रोड की रूपसियाँ जब मराठी साड़ियाँ पहने बाहर घूमने निकलती हैं, कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, कि ये अबलाएँ अपने पति, भाई और पिता के पोपण के लिए अपने पवित्र गात

का सौदा करने जा रही हैं !

इस बम्बई को कोई क्या कहे, जहाँ भाई बहन को साथ लेकर उसकी पवित्रता का सौदा करने जाता है। जहाँ पिता अपनी कन्या की पावनता को रक्त-सापी जाता है, जहाँ सैकड़ों मुसटण्डे केवल नारी की कमाई पर पलते हैं—पलते नहीं, ऐय्याशी करते हैं !

यहीं, इन्सानियत की पूँजी को मद्रास में ही गड्ढे में दबाकर आए हुए, आबारा मद्रासियों का 'गेग' रहता है, जिनके मुखिया हैं—नागप्पा, शेषप्पा ! जो दिखाने के लिए पान की छोटी-छोटी दुकानें लिए बैठे हैं—पर, कमाते हैं, दादागिरी की बदौलत—मर्द होकर औरत की कमाई खाते हैं ।

बम्बई उस कोढ़ी की तरह है, जिसके मुँह पर कोढ़ के लक्षण न फूटे हों, और शरीर का जो सारा कोढ़ कीमती दुशाले से ढँके रहता हो !

कोढ़ ला—इलाज होता है !

पन्द्रह

नारी के शोषण का मूल कारण है, आर्थिक-असमानता !

इसी आर्थिक-अव्यवस्था के कारण नारी खिलौनों की तरह बाजार में विकती है, टूटती है; मिट्टी में मिल जाती है—वह भी, उसका मातृत्व भी—इन्सान की इन्सानियत भी अपने साथ दफन कर लेता है, नारी का यह नरक-प्रस्थान !

जो अतिनिर्धन हैं, वे विवश है—अपनी माँ-बहनों की अस्मत् की रखवाली उनसे नहीं हो पाती । भाई इतना मजबूर है कि वह बहन को वेश्या बनने से बचा नहीं पाता । इसी तरह यहाँ मानवीयता के सारे नाते-रिश्ते अपवित्र-असम्बद्ध होने के लिए मजबूर हो जाते हैं ।

दूसरी ओर, जिनके पास आवश्यकता से अधिक धन है—वे नारी को भोग-विलास का माध्यम मानते हैं—इससे ऊँचा स्थान वे

नारी को देना नहीं चाहते। इस प्रकार नारी की अवस्था, दोनों स्थितियों में, शोचनीय होती जा रही है—यह भी समाज का आंतरिक कोढ़ है।

आर्थिक-असमानता का जितना गहरा दलदल बम्बई-जैसे जन-संकुल शहरों में है, अन्यत्र नहीं। यहाँ एक ओर हजारों वेश्याएँ हैं, जिनके भाव आटा-चावल की तरह बँधे हुए हैं; दूसरी ओर प्रच्छन्न-रूपा वारांगनाएँ हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से गृहस्थी वसाए रहती हैं ! और हजारों ऐसी अभाव-पीडिता भी हैं, जो दुअग्नी-चवन्नी में ही अपना शरीर किसी को भी सौंप देती हैं।

एक ओर नारी की यह दयनीय स्थिति है, तो दूसरी ओर यहाँ ऐसी औरतें भी हैं, जो हरी साड़ी के साथ लाल, लाल साड़ी के साथ हरा सेडिल 'चूज' करने में व्यस्त रहती हैं। उनकी लिपस्टिक-पाउडर का खर्च साधारण गृहस्थ के पूरे घर के खर्च के बराबर होता है.....

एक ओर पंचपुरा-आवासों में, कहीं-कहीं, कुत्ते के लिए भी अलग कमरे हैं, दूसरी ओर कीचड़ की नालियों (पाइपों) के अन्दर मानव-बस्ती बसी है, फुटपार्थों की क्या गणना !

गरापत के शब्दों में बात कुरला से काँदीवली चली गई।

तो पटवर्द्धन गरापत को बोला था—

सोलह

उधर—

मुंबई का शेयर बाजार का उधर—

आमंचा^१ धनी पण दलाल^२ होता। सेट हरसनदास टीकमदास मांखरिया, शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर'—ग्रज्ञा त्याचा आफिसांत पाटिया लावलेला होता।^३

उधरच, गणपत भाऊ, जिधर ये दलाल लोग आक्खा दिवस कुतरा-सारीखा^४ बूम मारते—नेशनल रायन, टाटा डिफर्ड, ई० डी० ऑर्डिनरी—सेंचरी……लिया—दिया !—बोले तो, एक दिवस एक 'परदेशी' को हम बोला होता, “क्या, भाई साहब, ये लोग लगातार चार-पाँच कलाक^५ तक जोर-जोर से बूम मारते, इनका मगज नहीं

१. हमारा । २. Share Broker. ३. ऐसा, उनके कार्यालय में, साइन-बोर्ड टंगा था । ४. कुत्ता । ५. घंटे

दुखता होईगा ?”

बोले तो, ‘परदेशी’ भी एकच जासूस, एकच पोपट !

बोला—“कुत्तों को ‘अमृतधारा’ लेते देखा है कभी ?”

हमारे को भी अँटी पड़ गया; जैसा काम—वैसीच सामर्थ पाँडुरंग देने को !

वैसे, बोले तो, विजनेस-सारीखा माल-पानी और किधर मिलने को ? राखड़ी^१ का चुटकी से चाँदी का महल बनाने को, बोले तो, विजनेसच करने को । अपनाच करसनदास सेठ को क्या बोले—तभी हम लहान होता; येच करसनदाम का, इसीच भुलेश्वर में, एक कंटम गाँठिया-पापड़ी का दुकान होता । आज का दिन, बोले तो, करसनदास की जिदगी को बाई ने गुरंग लगा दिया—पण, उसकी लाखों की गिरस्ती, बोले तो, इधरच, पन्नास हजार रुपया अपना सेठ ने वो त्रिभुवन रोड वाली शकुन्तला बाई राँगड़ेकर का नाम ऊपर ‘इण्डिया बैंक’ में जमा कियेला ।

शकुन्तला बाई काच हिस्टरी अपन बोलीगा ।

महाराष्ट्र नाट्य मंडली में नटी^२ होती ।

उसका एक-एक लावनी बोले तो—एकच टेसदार!

उसका एक-एक डैन्स^३ बोले तो—टापदार !!

पिल-हाउस पर ‘बाम्ब्रे थिएटर’ बोले, तो किसी ने भी देखा होईगा ! वोच थिएटर में महाराष्ट्र नाट्य मंडली का नाटक होता ! त्या दिवसीं क्या नाटक होता^४ —दुष्यंत-शकुंतला ।

१. राख । २. अभिनेत्री । ३. डांस । ४. उस दिन क्या नाटक था । ‘होता’ था के लिए प्रयुक्त होता है, बम्बईया हिन्दी में, और ‘होती-होते’ थी-ये के लिए ।

शुक्र का दिवस होता ।

अमेरे करसन सेठ उधरच नाटक देखनेकू गयेले ।

तो^१ नटी शकुन्तला, बोले तो, दुष्यंत की शकुन्तला-सरोखीच सुन्दरी ! तारुण्य के भार से उसको छाती, बोले तो, पीरू का डाली का माफिक हिलती होती । हुसन से उमका आंखी, बोले तो, बिजली का बलब-सरीखा रोशनी देती होती, पंखा-सरीखी फरफराती होती ।

बोले तो, क्या, अपना सेठानी पण कम हुमनदार थोड़ीच !

पण, घर का मुर्गी, बोले तो, दाल-बरोबर !

करसन सेठ उस नटी शकुन्तला वार्ई का दुष्यंत बन गयेला ।

अपना सेठानी यशोदाबेन से शादी बनायेला एकच वर्ष होयेला । पण, क्या बोले करसन सेठ को, उस बिचारी का तकदीर 'गोविंद तो आला-आला'^२ के दिवस की हंडी-सरीखा फोड़ डाला—करसन सेठ ने ।

क्या, गणपत भाऊ, अपन तो प्यारे, तुमेरा जिगरी दोस्त ।

३. वह । २. 'गोविंदा' का त्यौहार महाराष्ट्रीयन कृष्णजन्माष्टमी को मनाते हैं । इस उत्सव में, अलग-अलग मोहल्ले वाले अपनी गली में आर-पार रस्सी बाँध कर उसके बीच में पानी की हंडी लटका देते हैं । हंडी के बाहर नोटों की माला बंधी रहती है । इन हंडियों को फोड़नेके लिए, जो टोलियाँ निकलती हैं—उन पर रंग का पानी डाला जाता है । हंडियाँ काफी ऊँचाई पर लटकाई जाती हैं—और उन्हें फोड़ने का नियम यह होता है कि एक-दूसरे के कंधों पर पैर रखके चढ़ें, फिर ऊपर वाला अपने सिर की टक्कर से हंडी को फोड़े । इसमें ये टोलियाँ बड़े कौशल का प्रदर्शन करती हैं । जोखिम इसमें काफी रहता है—हाथ-पाँव किसी का टूट जाता है, कभी-कभी सिर ही फूट जाता है । पर इन लोगों का उल्लास इतना अधिक होता है, कि बोट को कुछ गिनते ही नहीं । हंडियों में बंधे रुपयों की संख्या कहीं-कहीं पाँच सौ रुपए तक की होती है ।

दोस्ती में पोस्ती अपन सिखेलाच नहीं। क्या अपन लहान^१ च होता, उस समय से करसन सेठ के घर ऊपर भाँडी घिसता होता। और बोले तो, करसन सेठ को मूँछ-दाढ़ी का बाल भी हमरे साथ च आयेले ! करसन सेठ की आक्खी जिन्दगी का पोल-पट्टी, बोले तो, हमरे लिए हाथ ऊपर का चोपड़ी।

इसोच त्रिभुवन रोड का ऊपर, करसन सेठ ने शकुन्तला बाई को बंगला किराए में लियेला^२। पीछू कदी-कदाच^३ घरी आवे करसन सेठ, वंसे बोले तो, महीने मे पंचवीस^४ दिवस शकुन्तला बाई का उधरच ! शामकूँ शेयर बाजार से छूटे, तो सीधा त्रिभुवन रोडकूँ। उधर से कार में लेकूँ शकुन्तला बाई को चर्चगेट, मरीन लाईन्स और मलाबार हिल—बालकेश्वर घुमाने का। पीछू^५ इरोज किवा मेट्रो-लिबर्टी में पक्कर देखने का।

खाने को, बोले तो, हाई कलास से हाई कलास होटलों में। अपना करसन सेठ गुजरातो होता, लहसुन-प्याज तक खाता च नहीं होता। परा, बोले तो, शकुन्तला बाई भी एकच पंछी—करसन सेठ को ऐसा अंटो में लियेली, कि होटल में पहुँचे तो आमलेट—कबाब से नीचूँ वात नही।

त्रिया-चरित्र को बोले तो, भक्वान् पांडुरंग भी नहीं समभेले ! चहा नहीं पीते होते करसन सेठ, मगर साल-भर शकुन्तला बाई का घोंसले में हकूँ, बोले, तोदारू का बाटली पिए बिना संडासकूँ^६ भी नहीं जावे !

१. छोटा ही। २. लिया था। ३. कभी-कभी। ४. पचवीस। ५. पीछे, बाद में। ६. शौच को।

सत्रह

क्या, गणपत भाऊ, एक बीड़ी तो पिला, प्यारे !
बोले तो, फकत आज का दिन अपन को कड़काई है ।
कल से बोले, तो अपन ये गाँडा सेठ लोग-सरीखाच फैशन में
रहिंगा ।

बाइ आज शामकूँ अपने को पन्नास रुपया, बोले तो, नुसता
कपड़ा के लिए देगा ।

अभी तू सोचता होईगा, हमेरो बाई काहेकूँ हमरे ऊपर इतनी
मेहरबानी करने को ? परण, प्यारे बाई लोग का दिल, बोले तो एकच
दिल ! लगन की पीछूँ तीन बरस तक, रो-रो के जिन्दगी काट
दिया बाई । करसन सेठ तो घरच नहीं आने को । जवानी बोले
तो, इलाहाबाद का पीरू-सरीखी फूटेली बाई को ।

क्या, प्यारे, मरद लोग को जवानी का प्यास बुझाने के वास्ते

लाखों रास्ते ठहरे—पण, बाई लोग को किधर इतना मौका । सेठ जी, मेरा यार घरच नहीं आवे । अपना बाई किधरकूँ जावे ?

बोल प्यारे, घर में एक अपनच । बाई अपन कोच नहीं देखे, तो पीछूँ किसको ? इसमें बोले तो, गुनाह किसका ? हमेरी बाई का ? हमेरा ?.....

पोपट, तू कहाँ बगैर गाँठ का गन्ना है ?

तेरी वसुन्धरा बाई का साथ में क्या-क्या लगा-लिपटी है, अपने लिए हाथ ऊपर का चोपड़ी । तू-मैं, बोले तो, एकच मुर्गी का बैदा-सरीखा^१ । गुना (गुनाह) न तूने किया, प्यारे, न अपने ने ! न तेरी वसुन्धरा बाई ने, न हमेरी जशोदा वेन ने !

गुनाह बोले तो करसन सेठ का !

गुनाह बोले तो, देसाई सेठ का !

शकुन्तला बाई को भी गुनेगार अपन कैसे बोले—बाई लोग^२ तो भागीरथी माई का पानी-सरीखा, अब हलकट मरद लोग उससे आचन करे, या मैली '—' धोवे!.....

आक्खा तीन वरस तक अमेरी बाई भी '—' में मुहर मारकूँ बैठेली । गैर से आशनाई करने के नाम पर, आंड^३ ऊपर घर का कबूतरका पर भी लगने नहीं देवे ? एक दिवस हमेरे दिल को भी बैदा खाये का जोश आयेला । अपन भांडी घसता होता । बाई चाय का वास्ते केतली लेने को आयेली ।

बाई बोली—“बासणो आज चमकताज न थी ! केम ?”^४

१. अंडा । २. औरतें । ३. शरीर । ४. बरतन आज साफ नहीं चमक रहे. क्या बात है ? .

बात बोले तो, सच्ची ।

पण अपनी अकल ऊपर कबूतर हगेला । वोच दिन हम पिल-हाउस का सिनेमा ऊपर इंगलिश पिक्चर देखेला । उस पिक्चर का सरीखा चूमा-चाटी, बोले, हिजड़े का जिसम भी जोर मारने को ! अपन तो करसन सेठ का घर ऊपर खुराक खायेला ।

भुलेश्वर पण एक च जागा !^१

पोरी लोग के नखरे कूँ कोई क्या बोले; बाल पकेली, गाल पिचकेली बाई भी जवानी की बत्ती लगाकूँ चलने को ! अपन, शपथ पाँडुरंगाची, सच्ची बोले तो, बाई लोग को आई-सरीखा^२ समजने वाला । पण, जिसम का चर्बी को कोई क्या बोले ? दररोज नहीं, दर-अठवाडिया^३ नहीं—पण, महीना पीछूँ एक-दो दफा तो औरत माँगताच, माँगता !

औरत, बोले तो, मरद की जिंदगी !

औरत, बोले तो, माँ नहीं बने—पीछूँ बच्चे का परवरिश बाप तो बाप, प्यारे, बाप का बाप भी नहीं कर सकने को !

औरत, बोले तो, औरत नहीं बने—ठंडी-गरम राती को चिटक के नहीं सोवे, तो क्या मरदका जिंदगी भी बगैर साखर^४ का चा-सरीखा ! बगैर मस्का का ब्रून-सरीखा !

हुसनदार औरत बगल में होवे, तो जिंदगी, बोले तो, पुनवेची^५ रात-सरीखी ! नहीं होवे, तो अमावस च समझो !……

इस हिसाब से, बोले तो, अपन रामा लोग का जिंदगी । बिना पाँखी का कबूतर-सरीखी ! बगैर पेटरोल की गाड़ी-सरीखी ! बगैर

१. स्थान । २. माँ-सी । ३. प्रति सप्ताह । ४. चीनी । ५. पुनवेची-रात ।

पेटी का कांडी-सरीखी !^१ बगैर अचार की हांडी-सरीखी, प्यारे, पीतल की भांडो-सरीखी !^२

सेठ लोग का घर में खाने को, बोले तो, माल ही मिलता है । देखने कूँ, मुंबई शहर का परी लोग—कोई अपना जिगर का ऊपर ढक्कन भी लगाकूँ रखे, तो आखिर कब तक ?……

अपन लोगों के ज्यादा करके सेठ लोग, बोले तो, घर ऊपर का खूबसूरत-से-खूबसूरत बाई की छोड़ के रंडी लोग का पलंग ऊपर जाने को ! पवनपुल-ऊपर नाच देखने को, गाना सुनने को—बोले तो, टेसदार लावनी ।

क्या, पोपट, अपन किसका गोष्ठी करता होता, रे ? वोच परी आनन्दी बाई थी ? आनन्दी को अपन क्या बोले, उसका पटवर्द्धन सेठ भी हमरे करसन सेठ-सरोखाच ! ये सेठ लोग का चर्बी को कोई क्या बोले ? पैसे का गर्मी च ऐसा होता है !

आनन्दी बाई, बोले तो, नरगिस-सरीखी ।

क्या, सुरैया-निम्मी-सरीखी ।

पोपट, मोनवर सुलताना-सरीखी !

पण, पटवर्द्धन साहिब का वास्ते वो पवनपुल का नर्मदा बाई च सुरैया-नरगिस । उसका एक-एक नखरा ऊपर, एक-एक अदा का ऊपर पटवर्द्धन साहिब का खजूर छाप नोट सरकने कूँ । उस रांड का ऊपर पटवर्द्धन साहिब जिन्दगी कुरबान करने को, कबरस्तान ऊपर बंठेले ।

उधर, घर ऊपर, बोले तो, आनन्दी बाई का जिसम पाकेले

१. बिना डिब्बी के सलाई की तिल्ली-सी । २. पीतल का बरतन ।

केले का माफिक ! उसके जिसम को नीचे से ऊपर कूँ देखे तो, 'हाय' करकूँ, जिगर ऊपर हाथ कूँ दबाकूँ रह जावे इन्सान ! ऊपर से नीचे कूँ देखे तो—उसका ब्लाउज को, साड़ी को क्या बोले ! अर्द्धा-अर्द्धा छाती पीरू-सरीखा बाहरच ? साड़ी ऐसी, गोल्ड-फ्लेक सिगरेट का कागज-गरीखी !

पीरूँ अपन सखाराम को क्या बोले ?.....

केला का न्द्रिलका ऊपर पाँव पड़े, तो फिसलना च फिसलना ! खूबसूरत बाई को एक नजर रास्ता ऊपर भी देखे, तो लोग-वाग जिगर धामकूँ रह जाता है; सखाराम का तो, घर ऊपर च विजली गिरेली !

अभी सखाराम कोण, बोले तो, अपनाच विरादर !

अवखा भोईवाड़ा का लोग-वाग बोलता होता, आनन्दी वेन का पोरा-पोरी बोले तो, सबका नाक-नक्शा सखाराम-सरीखा !

सखाराम कोण ?

पटवर्द्धन साहिव का नौकर !

नौकर भी कोण ?

भाँडी घसने वाला !

पण, बोले तो सखाराम भी किसका यार ?

हमेरा !

अपन कोण, सखाराम का जिगरी दोस्त—उसका सेठ

पटवर्द्धन का नाम-राशी !

क्या बोले, सखाराम घर ऊपर का जूठा भाँडी घसता-घसता आनन्दी बाई को पण घस दियेला ! उसका सारा माल-पाणी निचोड़कूँ रख दियेला ! औरत बोले, तो, हाथ का ऊपर का ताश-

पत्ती—बेगम का ऊपर बादशाकूं मारे तो ?

बेगम, बोले तो, तर !

खुश !

ये हिस्टरी, बोले तो, सेठ पटवर्द्धन गोबर्द्धन साहिब को मालूम पड़ गेली !

उस कसाई कूं अपन क्या बोले ?

वोच हमेरे जिगरी दोस्त सखाराम की जिन्दगी कूं वरली का गटर में पहुँचाएला ! भायखला का मोड़ ऊपर वोच ऐसे अपनी कार को दीवाल से टकराया, कि उसका तो '—' का बाल भी टेढ़ा नहीं, परण हमेरे जिगरी दोस्त सखाराम भाऊ का, बोले तो, आक्खी जिन्दगी का पाटिया च आउट !.....

अपन गरीब नौकर लोग का जिन्दगी च ऐसा बैलून-सरीखा ! सेठ लोग हवा निकालकूं रखने को देखता, सेठानी लोग हवा भर कूं.....

हवा भी, बोले तो, इतना भरिगा—एक दिन फ्याट्ट !.....

क्या, गणपत भाऊ, क्या, पाद मारता क्या रे ?

नहीं तो ये 'फ्याट्ट' का बूम किधर से आया ?.....

क्या, दोस्त, तुम भी हमेरे कोच काठ का उल्लू बनाती, रे ?...

क्या अपन तो जसोदा बेन, अपना सेठानी का हिस्टरी शुरू किया होता रे ? शकुन्तला बाई का, करसन सेठ का पोल-पट्टी शुरू करेला !

क्या, पोपट, जरा 'सूखा' तो खिला, प्यारे !

१. बम्बई में बीड़ी में भरी जाने वाली तम्बाकू को, चूना मिलाकर, सुती की तरह खाते हैं—उसी को सूखा कहते हैं ।

अठारह

गणपत भाऊ !

यशोदा बेन को तू कल-परसों—कदी^१ सड़क ऊपर देखा क्या, रे ? तेरी आँखी को तो पारले का पिपरमेन्ट लग गयेला है, देखिगा क्या ? औरत के हुसन का, बोले तो, पर्दाव ऐसा होता है; वसुन्धरा बाई का जोबना, बोले तो, कबूतर का ऊपर कबूतर का माफिक तेरे ऊपर चढ़ेला ! बोले तो, तेरा खयाल-आदतपण पोपट- सरीखा^२ !

पोपट-सरीखी आदत, बोले तो, खड्ड में गयेली बासकू सूँघने का !

पण, तू प्यारे, हमेरा जिगरी दोस्त ! हिस्टरी का बास-इत्र, बोले तो, तेरे से क्या छिपाने का ? 'जोबना', बोले तो, हुशन ! उधर, फार दिवस गयेले,^३ बोरीवली^४ ऊपर हम एक भँय्या^५ जी का उधर,

१. कभी । २. शुक । ३. बहुत दिन हुए । ४. बम्बई का एक उपनगर ।
५. बम्बई में उत्तर प्रवेशीय बूघ वालों को 'भँय्या' कहते हैं ।

भैस का तबेला ऊपर । वोच भैय्या जी हमेशा-दर-रोज एक गीत गाता होता, बोलता होता, “हम इसको जैजन्ती’ का राग से गावत है !”

गाता होता—

“जोबना को दिन मेरो, आने दे सैया मोरे !”

हम पोछूँ, एक दिवस, इस गाणी का मतलब पूछा होता ।

भैय्या जी बोले—“एक लड़की थी; उसके खसम ने क्या करी—
उमको पलंग-ऊपर खींचा ! लड़की को जोबना नहीं, तो बोली—
‘जोबना को दिन मेरो, आने दे सैया मोरे !”

“पोछूँ ?” हम पूछा ।

“लड़की बोली,” भैय्या जी बोले—“आप-ही-आप मैं तोरे धोरे आऊँगी !”

“मतलब बोले तो ?” हम पूछा ।

“लड़की बोली,” भैय्या जी बोले—“इसका मतलब हुई, जवानी आने पर, मैं खुद तुम्हारे पास आऊँगी !”

यशोदा बेन का साथ, बोले तो, हमेरी गोष्ट भी ऐसीच !

वो दिवस का, तुमेरे को याद है, भांडी घसता टैम का हिस्टरी हम बोलता था । क्या, यशोदा बेन हमेरे को पूछती होती—“केम, पटवद्ध न, वासणो आज चमकता न थी ?”

बात, बोले तो, सच्ची !

परा, हमेरी अकल को कांडी लगेगी । जिसम को पारला का ओरेंज लागेला ।

हम क्या बोला—“इस वखत तो, बाई, तुमेरा जिसम भी नहीं चमकता है। अभी हमरे को बोलो, हमरे से मोहबत, बोले तो, इश्क करो—तुमेरा-हमेरा, दोनों का जिसम चाँदी का माफिक चमकेगा !”
—और हम लपकूँ, बाई का पप्पी^१ ले लिया होता।

बाई को क्या बोले ?

हमेरे को लाफा^२ मारेली !

पण, हमेरी बाई का लाफा भी, बोले तो, जैसी-कैसी बाई का पप्पी-सरीखा च !...

अभी बोलो, उसका पप्पी कईसा-कईसा टेसदार होईगा, जिस बाई का लाफा ऐसा टेसदार होईगा ? क्या, गणपत भाऊ, बाई लोग का दिल भी एकच जासूस ! दारू में ‘डौन’ ड्राइवर का माफिक किधर एक्सीडेंट करिगा—किसी दूसरे को क्या माहिती पडिगा ? बाई लोग का दिल—बोले तो, कबूतर का पाँखी का माफिक। किधर कूँ उडिगा, किसका घोंसला आबाद करिगा, किसको माहिती ?

बाई लोग का दिल भी एकच।

हमेरे को बाई बोली—“जरा सेठ ने घेर तो आवा दे, हूँ तने पछी नौकरी ऊपर थी कढ़ावी नाकीश ! हूँ तारी बेन-जेवी, तूँ मारा ऊपरज कुदृष्टि नाखिए छीए !”^३

गुजराती, बोले तो, हम भी समझताच, समझता !

पण, हम अपना तोंड^४ ऊपर शतरंजी^५ डाल कूँ रह गयेला !

१. चुम्बन। २. थप्पड़। ३. जरा सेठ को घर आने दे, मैं तुम्हें नौकरी से अलग करवाऊँगी। मैं तेरी बहन-सी थी, तूने मुझ पर ही कुदृष्टि डाली !
४. मुँह। ५. बरो।

खामूश रह गएला !

चोप रह गएला !

वैसे, एक दफा तो, हमारे को भी दत्तू भाऊ-सरीखा जोश आ गया होता बाई कूं देखे, तो गुस्सा का वखत ऊपर और भी हुसन-दार दिखती होती !^१ अभी, दत्तू भाऊ, बोले तो, कोण ?

बोच, रे, पोपट, बोच !

जिसकूं अभी तुम भी शाम-सुबह दूर से च^२ हाथ जोड़ता है !

बोच दत्तात्रेय सेठ—

भुलेश्वर नाका ऊपर, करसन सेठ का घर का ये बाजू ।

देसाई सेठ का घर का, बोले तो, वो बाजू ।

बोच जवेरी^३ !...

लखपात जवेरी !

हमेरा दत्तू भाऊ—

पटेल सेठ का भंडी घसने वाला रामा !

रामा, बोले तो, गणपत भाऊ, तुम भी !

क्या, हम भी !

पण, दत्तू भाऊ को पांडुरंग हसी भंडी दिखाएले ! हिस्टरी, बोले तो, हिस्टरीच !

एक दिवस की बात,

पटेल सेठ सिनेमाकूं गयेले !

किसकूं साथ लेके ? अभी तेरेकूं मसखरी लगीगा !

१. बिलती थी । २. दूर से ही । ३. जीहरी ।

पांडुरंगाची शपथ, प्यारे, लछमी बाई कूं साथ लेके !

लछमी बाई, बोले तो, कोण ?

तेरे को तो मालूम ही ?

बोच दातून वाली, नटखट पोरी ! बोच, 'म्हारी गली आवजो, रे !'^१ वाली लावनी गाती होती ? उसका छाती का बटन भी, बोले तो, दर-हमेशा उघड़ेलेच !^२ खूबसूरत, बोले तो, होतीच !^३

पण, किधर पटेल का बाई—शारदा बेन !

एकच 'जोबना' वाली !

किधर पटेल सेठ—नामी जवेरी !

किधर लछमी बाई—'आना मा वे, वे आना मा चार !'^४ का आवाज देकूं, दातून का लकड़ी वेचने वाली !

पण, पोपट, मुंबई का सेठ लोग का दिल भी एकच कबूतर ! एकच जासूस ! एकच जालिम !

मुंबई का सेठ लोग—सभी को अपन कई से '—' बोलिगा ? पण, रुपया में आठ आना, बोले तो, हैच ! घर ऊपर का खीर—वासुंदी कूं लात मार कूं बाहर का ऊसल—पाव कूं दौड़ने वाले !

उधर पटेल सेठ लछमी दातून वाली कूं लेकूं 'तीन बत्ती, चार रास्ता' देखने कूं गयेले । इधर बैठक का तीन बत्ती बुझा कूं, अन्दर का चार खिड़की बन्द करकूं—हमेरा दत्तू भाऊ शारदा सेठानी का रूम में घुस गयेला !

सेठानी का मुंह ऊपर कपड़ा देकूं, आकखी रात-भर जशन

१. मेरी गली आना रे ! २. उघड़े हुए ही । ३. थी ही । ४. एक आने में दो, दो आने में चार ।

मनाएला ! जिंदगी का मजा लिएला !

वो दिवस, बोले तो, ये दिवस ! ..

शारदा सेठानी दत्तू भाऊ का वास्ते जाने-जिगर कुरबान करेली ! पटेल सेठ से छुपा-छुपाकूँ, दत्तू भाऊ को रकम दिएली । पीछूँ, आज पटेल सेठ का मंगल-सूत्रकूँ काँडी लगाकूँ, दत्तू भाऊ का घरबार बसाएली !

दत्तू रामा, बोले तो, आज जवेरी !

पण, अपन, बोले तो, कौँबड़ी^१ का माफिक कौँबड़ी ही रह गए ले ! आज, बोले तो, अपन भी दत्तू भाऊ-सरीखाच, सेठ का माफिक जिंदगी आवाद कर सकने कूँ—पण, हमेरी सेठानी को तुम कदी मुंबादेवी का मंदिर कूँ जाते देखा क्या ?

प्यारे, हमारी सेठानी—यशोदा बेन—

जोगन बन गएली !

काहे कूँ ?

हा-हा-हा—

येच, पोपट, बाई लोग का टिरीक !

अपना पंडित केहता होता, “स्त्री चरित्रो, कुत्तो न जाने !”

यशोदा बेन करसन सेठ का शोक में जोगन बन गएली ।

हाथ ऊपर रुद्राक्ष की माला और कमण्डल लिएली !

पण, दिल में, बोले तो, निम्मी का माफिक जोवना !

‘जोवना’ बोले तो, वो दिवस का बात याद आया !

क्या, वो दिवस बाई हमेरे को जरा-सा पत्ती लेने पर लाफा

मारा होता, पीछूँ खुद अपना पीरू-सरीखा गाल कूँ हमेरे दाँत कूँ
दिएली ! अपना—'को अपना मर्जी से हमेरे—'से लगाएली !

तभीच-भैय्या जी बोलता होता—

“जोवना को दिन मेरो आने दे, सैया !”

अपना बाई को भी पीछूँ जोवना चढ़ेला, तो खुद हमेरे से लगा-
लिपटी लगाने कूँ ! हम बोला होता, “बाई, भगतन वन जाओगी
तुम, पीछूँ हम किसका साथ सोईगा !”

बाई बोली—“तने शुं फिकर छे ? तारा माटे तो हूँ,
तारीज !”^१

हमेरी बाई—सेठानी यशोदा बेन—

दिन कूँ, बोले तो, भगतन—

क्या, जोगन !

रात कूँ, हमेरे साथ, निम्मी—

नरगिस—

मोनवर सुलताना—

भैय्या जी पण एकच जासूस !

ठीकच बोलता होता—

“जोवना को दिन मेरो आने दे, सैया !”

अच्छा, गरपत भाऊ, एक बीड़ी तो पिला, प्यारे !...

१. 'तुम्हें क्यों चिन्ता है ? तुम्हारे लिए तो, मैं तुम्हारी ही हूँ ।'

उन्नीस

भुलेश्वर, बोले तो, भुलेश्वर च !

सेठानियाँ, बोले तो, सेठानियाँ च !

आक्खा मुंबई तो अपन भी देखेला नहीं ! पण, भुलेश्वर हमारे लिए—गणपत रामा के लिए—हाथ ऊपर का चोपड़ी !

एक-एक घर हमेरा देखे ला । एक-एक सेठ को राम-राम किए ला !...

उक् · उक्...उक् ·

किएला से, बोले तो, पिएला का तुक जुड़ता है !

तुक, बोले तो, लावनी—गाणी का जाने-जिगर !

वो, भारती व्यास का गोष्ट हम आप लोग को बोला होता—
एक-से-एक टेसदार लावनी, बोले तो, भारती व्यास लिखताच,
लिखता ! कईसे ? बोले तो, ऐसेच तुक-ऊपर-तुक मिलाके !

जादूगर सैया, छोड़ो मोरी बैया—

बोले तो, क्या ?

सैया, बोले तो, बैया—

सैया का, बैया का तुक एकच !

तुक, बोले तो, लावनी—गाणी का जाने-जिगर !

सैया का जाने-जिगर, बोले तो, बैया—

जादूगर सैया, बोले तो, करसन सेठ—

करसन सेठ, बोले तो, जशोदा बेन—

जशोदा बेन, बोले तो, शारदा बेन !

शकुन्तला वाई—वसुन्धरा वाई—

वसुन्धरा वाई, बोले तो, कोण ?

हमेरी सेठानी !

देसाई सेठ की बायकोन, बोले तो, वोच !

उक् उक् उक्...

पटवर्द्धन पण एकच पोपट ।

अपना वाई का हिस्टरी, अपना सेठ का पोल-पट्टी खोलके चालू पड़ गया ! पटवर्द्धन कोण ? साला, भांडी—भूठा भांडी घसने वाला रामा ! रामा लोग, बोले तो, साले हलकट ! हरामखोर ! बेइमान !

जिस पिक्चर कूँ देखेगा, उसी की हिरोईन का फूटो—फूटो, बोले तो, तस्वीर—का पप्पी लेंगा ! अभी सिनेमा का हिरोइन लोग, अपना माँ-बहन-सरीखा । वो लोग का ऊपर बुरी नजर डाले, तो कोढ़ फूटिंगा आक्खा जिसम को । हिरोईन लोग का तस्वीर देखे, तो भगवान पांडुरंग का दर्शन करे का बरोबर !...

तभीच अपन रामा लोग को हलकट बोलता है ! जो सिनेमा देखेगा, उसीका च पर्दा ऊपर पत्थर फेंकिगा !...

अभी सिनेमा का पर्दा, बोले तो, गणपति बाप्पा का मंदिर-सरीखा ! उसकूँ तो, दूरसेच हाथ जोड़ने को—फूल-पाती चढ़ाने को !
पण, पटवर्द्धन, बोले तो, रामा !

रामा लोग, बोले तो, हरामखोर !

जोच पत्तल में खाईगा, वोच पत्तल में छेद करिगा !

जिस सेठ का घर ऊपर झूठा भांडी घसिगा, वोच सेठ की सेठानी का जोबना भी घसने को देखिगा ! फोकट खाऊ लोग, सेठ का माल-पानी उड़ाके च सेठानी का मजा भी बूटिगा ! घर ऊपर का ताँबा-पीतल का भांडी साफ करकूँ, सेठानी लोग का जिसम कूँ झूठा करिगा !

सेठानी लोग, बोले तो, अपना माई-बहन-सरीखा !

औरत, बोले तो, औरत च !

उसकूँ अपन क्या बोले ?

औरत हाथ ऊपर का खाली चोपड़ी-सरीखा । अभी हलकट मरद लोग उसमें संत ज्ञानेश्वर का माफिक ज्ञानेश्वरी लिखकूँ पवित्र बनावे, या वो हलकट भारती व्यास का माफिक तिरछी नजर, पतली कमर का लावनी लिख-लिखकूँ गंदा करे !

अभी आप लोग हमरे को बोलिगा, हमरे लोग का कोई ईमान-घरम नहीं । हमरे लोग में कोई इन्सानियत नहीं । आप लोग हमेरा बाप-सरीखा है; आप लोग अपन को चार लाफा भी मारिगा, तो अपन आप लोग को क्या कर सकता है ?

अपन गरीब रामा लोग !

तकदीर की हाँडी फूटेली, घर-गिरस्ती को भगवान् पांडुरंगच काँडी लगाएले; पीछूँ आप लोग को अपन क्या बोले ?

आप लोग क्या, गरीब को जोरू को आक्खी मुंबई वाले भाभी बोलते । बोले तो, गरीब की औरत का '—' कापड़ मजबूरी से भी जरा उधड़ा रहिगा, तो '—' लोग का आँखी, कबूतर का माफिक, उधरच-उधरच जाने को । गरीब औरत का भाऊ-बाप और खसम की जिदगी कूँ सात-सात दफा कोलतार लगाने को !...

येच क्या इन्सानियत ?

पैसे वाले की बीबी, चौपाटी का रेती का माफिक माल-पानी होके भी, हुसन का जादू दुनिया को दिखाने वास्ते बारीक-से-बारीक, तंग-से-तंग कापड़ पहननेकूँ । ब्लाउज का ऊपर-नीचूँ से जालिम, पंछी-परी लोग का छाती इलाहावाद का पीरू,^१ काश्मीर के सफरचन्द^२ के माफिक बाहर आने को ।

उसकूँ बोले लोग फैशन !

वो लोग बड़ा आदमी !!

इज्जतदार !!!

और अपन मजबूर लोग बेईमान ?

हलकट ?

हरामखोर ?

हलकट होईगा आप लोग ! हरामखोर, बोले तो, सिनेमा का हिरोईन लोग ! डायन लोग गरीब लोग की खून-पसीने की कमाई नंगी टाँग-छाती दिखाकूँ, कमर लचकाकूँ, वो भारती व्यास-सरीखा

हलकट शाहीर लोग का हलकट लावनी गाकूँ मिट्टी में मिलाने को !

मेहनत करके भी, गरीब लोग का माँ-बहन भूख से तड़फने को—

सिनेमा का हिरोईन लोग खाली टाँग दिखाकूँ, कमर लचकाकूँ
ऐय्यागी का जिदगी मजा मारनेकूँ !

सिनेमा का हिरोईन लोग, बोले तो, हरामखोर !

गंदा-गंदा गाणी लिखने वाले शाहीर लोग, बोले तो, साले लोग
राक्षस ! हलकट !

अपन गरीब लोग का रहने को, बोले तो, भोंपड़ा भी नशीब
नहीं ! जालिम पंछी लोग का डान्स—जोबना दिखानेकूँ, बोले तो,
लिबर्टी—मेत्रो—नाज ! पैलेस—स्वस्तिक—पेराडाइज !

लेमिंगटन !

इम्पीरियल !!

पतरावाला सिनेमा !!!...

उक्...उक्...उक्...

पतरावाला सिनेमा, बोले तो, उसी का च बाजू में ताज सिनेमा !
ताज सिनेमा, बोले तो, उसी में च अपना दोस्त बिट्टल !

उसका जिदगी, उसका हिस्टरी भी एकच !

पण, पीछूँ बोलिगा ?

सबूर करो !

सबूर का फल मिठाच होता है ! सबूर, बोले तो, अपन भी
आक्खी जिदगी-भर किएले ! पीछूँ जाके आज अपना सेठानी का
मेहरबानी से सेठ लोग का माफिकच मौज किएला—

तुक मी, बोले तो, एकच !

मौज किएला का तुक, बोले तो, दारू पिएला !

दारू पिएला, बोले तो, मौज किएला का जाने-जिगर !

दारू पिएला कोण ?

हमेरे लिए, दारू पीना, पेशाब गोना—बरोबरच !

दारू पिया होईगा हमेरा बाप !

अभो सेठानी ने हरा पत्ता दिया होता करकूँ, '—' भर अपन भी पी लिएले, तो कौन से कद्दू में लीर मार दिएले ?

कद्दू. बोले तो, भोपला !

भोपला, बोले तो, हमेरी जिदगी-सरीखाच !

हमेरी जिदगी, बोले तो, प्राक्खी इसीच मुंबई में तेल लगानेकूँ गएली ! तेल में तेल, बोले तो, खुयवदारच !

खुशबू में खुशबू, बोले तो, अपना छोटा दाई कालिन्दी बेन का सिर में, अपना जाने-जिगर वसंती दाई का साड़ी-सेंडिल में !

साड़ी-सेंडिल, बोले तो...

उक् .. उक् .. उक् ..

ले रे, पटवर्द्धन, बीड़ी माँगता क्या, रे ?

बीस

वसन्ती बाई, बोले तो, हमेरी छोटी बाई !

छोटी बाई, म्हणजे, धनी की पोरो^१ !

वसन्ती बाई, बोले तो, हमेरे नौकरी ऊपर जाने से पहिले च दाल-भात चाखेली । दाल-भात चाखेली, म्हणजे, अली-गली के तीन-चार पोरे^२ लोग से लगा-लिपटी लड़ाएली ! लगा-लिपटी का मतलब पूछे तो, आशनाई !

आशनाई, बोले तो, इशकबाजी !

इशक, बोले तो, गालिब ने निकम्मा कर दिया ! वरना.....

देसाई सेठ, बोले तो, एक च इशकबाज !

इशकबाजी, बोले तो, देसाई सेठ की जिन्दगी !

देसाई मेठ का जाने-जिगर !

१. सेठ की लड़की । २. लड़के ।

दर-आठवाडिया देसाई सेठ का तरफ से मंदिरों में, बोले तो, डलिया भर-भरकूँ पुरी-लड्डू गरीबों का वास्ते !

गरीब, बोले तो, भिखारी लोग !

ये लोग का भी जिन्दगी, बोले तो, जिन्दगी च !

एक पूड़ी, एक लड्डू का वास्ते—

सुबू पाँच बजे से सात-आठ बजे तक मंदिर का आगे लाइन लगा के रहने को । एक पूड़ी, एक लड्डू का वास्ते तीन-तीन कलाक इन्त-जार—सबूर करने को ! सबूर भी, बोले तो, आवखी जिन्दगी-भर !

ये च सबूर का, येच भीख माँगने का—भीख का टुकड़ा का वास्ते इन्तजार करने का आदत गरीब लोग की जिन्दगी को गट्टर में डालेला ! गट्टर, बोले तो, नरक !

जिसम से कमजोर सेठ लोग, जो रात कूँ अपनी च बाई को नहीं सँभाल सकने को, नरम-नरम गद्दा ऊपर मजा करने को, खीर-मस्का, कबाब-आमलेट का सिवा बात नहीं करने को; बिजली का पंखा-नीचूँ पण जोर-जोर से साँस लेनेकूँ, हाँफने कूँ—

और, बोले तो, ये च मुंबई में हट्टा-कट्टा गरीब लोग भीख माँगने को—भीख ऊपर भी गुजर नहीं होने को ! पीछूँ कच्ची-कच्ची उमर का छोकरी लोग पिल-हाउस, कमाठीपुरा, फारस रोड आवाद करती ! कच्ची-कच्ची उमर का छोकरा लोग या तो दारू सप्लाई करने को, या वाचमैन पठान लोग से……लखनऊ से आयेले, भिंडी बाजार आवाद करेले '—' लोगों से……

अभी आप लोग च बोलो, क्या ये लोग किसी का भाई-बहन नहीं ? ये लोग इन्सान नहीं ? ये लोग का वास्ते, ये लोग की जिन्दगी का वास्ते—इन्सानियत का चोपड़ी ऊपर कोई कायदा-

कानून, कोई इन्तेजाम नहीं ?

सरकार, बोले तो, हमेरी आई-वाप !

नेहरू जी, बोले तो, हमेरे राम राजा !

अपना देमाई-बव्हाण साहिव भी बोले तो लक्षमण-भरत-सरीखे !
हम गरीब लोग के माँ-बाप ! कासम भाई का माफिक बोले
तो, परवरदिगारे-आलम ! बादशाहे-नियामत ! हुजूरे वाला !

पण, सच्ची बोले तो, सबके-सब एकदम कसाई च !

नेहरू जी, बोले तो, राम-सरीखे—

लेकिन उनकी च राजधानी में इन्सान का जिन्दगी कुतरा क
माफिक गट्टर में जाने को—गट्टर, बोले तो, नरक !

नरक, बोले तो, ये सरकार पण नरक में च जाईगा !

हम भूठ बोलिगा ! हमेरा वाप भूठ बोलिगा !

पण, संत कवि तुलसीदास तो भूठ नहीं बोलिगा ?

बो च महाकवि तुलसीदास केह गयेले—

जासु राज नहिं प्रजा सुखारी...ई...ई...ई...

सो नृप अवसि नरक-अधिकारी !!...ई...ई...ई...

बो च संत तुलसीदास का हिसाब से बोले तो—सरकार का
रुपए में बार आना खोडर लोग नरक च आबाद करने को !

ये च तुलसीदास बोले ले !

ये च रामायण बोले ला !!

ये च अमेरी आत्मा पण बोलेली !!!

इक्कीस

आत्मा, बोले तो, कोण !
ये च--जाने-जिगर !
पहले आत्मा, बोले तो, पीछूँ परमात्मा !
आत्मा का तुक बोले, तो, परमात्मा !
परमात्मा का जाने-जिगर, बोले तो, आत्मा !
आत्मा का वास्ते च लोग-बाग एक-से-एक पाप, एक-से-एक पुण्य
कियेले ! पीछूँ पाप-पुण्य, बोले तो, एक डालो के दो फन !
एक बाजू, गरीब लोग का जिन्दगी रखकूँ,
एक बाजू, सेठ लोग का जुलम रखकूँ
बोले तो, मतलब ये च !
मतलब, म्हणजे, इन्सान का जिन्दगी !
जिन्दगी, बोले तो, सबकी एक सरीखी च !

हमेरे को दो आँखी, तो देसाई सेठ को चार आँखी नहीं

गरीब को दो टाँगी, तो सेठ को चार किधरकूँ ?

पण, गरीब को, बोले तो, आकखी जिन्दगी-भर सजा !

सेठ लोग को मजा-च-मजा काहेकूँ ?

मजा-मौज देसाई सेठ भी खूब किएले !

आकखा भुलेश्वर में देसाई सेठ नम्बर एक !

पण, नियत-ईमान, बोले तो, कुछ नहीं !

भिखारी लोग का पोरी लोगको भी, घर में भाँडी घसवाने का बहाना बनाकूँ, बुलाने का—पीछूँ बेड-रूम में ले जाकूँ……

दिल, बोले तो, देसाई सेठ का एक च ! दर-हमेश खुद मजा मारकूँ दरेक पोरी को हमेरे को सौंपेले कि 'ले रे गएपत, तेरा तबियत भीतर करले !'

पण, अपन भी एक च जासूस !

एक च पोपट !

अपन तो गरीब पोरी लोग का जिसमकूँ हाथ भी कदी लगावे नहीं । काहेकूँ, बोले तो, वो गरीब पोरी लोग हमेरे लिए हमेरी गंगा बाई-सरीखी च ! एक दिवस की गोस्ट बोलिगा । गोस्ट, म्हणजे, कथा-कहाणी ।

देसाई सेठ एक पोरी लाएले ।

पोरी, बोले तो, जोबना वाली ।

पण, उसका आँखीकूँ कोई देखे—ठीक हमेरी गंगा बाई सरीखी च, गम में, बोले तो, दर्द में डूबेली । दातून बेचती होती । देसाई सेठ उससे दातून घर ऊपरच मँगावे । वो दिवस बोले—“जरा ऊपरना

रूम मा लईजा, हूँ हमराज आवींश^१ ।”

पोरी थी गुजरातन । समझ गयेली ।

दातून लेके वो ऊपर गई, क्या, पीछूँ-पीछूँ देसाईं सेठ भी ऊपर गए । अपन किसी को क्या बोले ? देसाईं सेठ ऊपर से वसुन्धरा बाईं, अपनी औरत, को नीचे भेज दिएले । वसुन्धरा बाईं का देसाईं बाबू का ऊपर कोई जोर च नहीं । उनके समोर च^२ देसाईं बाबू बाहर का औरत लोग को पलंग ऊपर सुलावे ।

वो दिवस हमेरी सेठानी का आँखी में पण आँसू !

औरत का आँसू, बोले तो, जादूगर का तीर !

उधर देसाईं बाबू उस गुजरातन पोरी को अपना बेड-रूम में लेके गएले । काहेकूँ, सोचे तो, अपन जानता होता—ईशक-मोहबत का दास्तान, सोचे तो, अपना दिल को भी रंग आवे । हमेरे सामने, वो दिवस वसुन्धरा बाईं—हमेरी सेठानी !

जोबना, बोले तो, उसको भी भरपूर आयेला !

ऊपर जोर से देसाईं बाबू पोरी की पप्पी लिए, तो क्या हमेरे से भी नहीं रहा गया । हम पण सेठानी को पकड़कूँ पप्पी ले लिया होता ! सोचता होता, ये बाईं पण पटवर्द्धन का यशोदा बेन का माफिक लाफा मारेगी । पण, हमेरी बाईं खुद हमेरे से चिटक गएली । पीछूँ हम सेठानी को किचन रूम में लेकूँ गया । औरत का साथ मरद—बोले तो—बेगम का साथ बादशा !

बेगम का ऊपर बादशा मारे तो ?

बेगम, बोले तो, तर !

खुश !

१. दातून तुम ऊपर के कमरे में ले जाओ, मैं अभी आया । २. सामने ।

बाईस

पीछूँ जभी देसाई सेठ उस पोरी को लेके नीचूँ आए, वोच टैम ऊपर अपन भो सेठानी का आखिरी पण्पी लेकूँ बाहर आया होता । देसाई सेठ हमरे को बोले, “इसको लेके अभी तुम किचन-रूम में जाओ । अपने साथ सुलाके, पीछे के रास्ते ही बाहर कर देना !”

उधर सेठानी भीतर से हो ऊपर पहुँच गएली । उसकी गीली साड़ी, बोले तो, उधर च । उधर च हमरे वास्ते एक पाँच का हरा पत्ता भी रखेला । अपन उस पोरी को वो साड़ी भी दे दिया, वो हरा पत्ता भी । पोरी बोली—“पैसा तो हूँ सेठना पासे थी लई लीधा छे ! हवे तमे मारा साथ हुई जावो, पछी जो तमे मने पैसा आपशो तो हूँ मारा बाल-बच्चा ना माटे लई लईश !”

उसका हिस्टरी भी अपन तभी पूछा होता ।

हिस्टरी, बोले तो, हिस्टरी च !

एकच !

उक्...उक्...उक्.....

तेईस

पगली का जीवन कितना पगला होता है !

पागलपन भी अपने आप में कितना रहस्यमय, कितना मुखर अनुभूतिपूर्ण होता है ! पागलपन की स्थिति तक पहुँचने के लिए, मनुष्य को जीवन जीने की कितनी कंकरीली-पथरीली-गहरी खाइयों घाटियों से गुजरना पड़ता है—अंतर्द्वन्द्व के कितने प्रशस्त-विराट मरू-प्रदेश में बिना 'थैली-गद्दी' के ऊँट की तरह भटकना पड़ता है !

नीलाम्बरी से कोई पूछे तो !

चौबीस

मेसर्स सेठ बालजी, लालजी 'फाउण्डर अॉफ गाठिया एण्ड पापड़ी-इन बाॅम्बे !' के रूप में प्रसिद्धि-प्राप्त हैं ! बम्बई के हर मशहूर नाके पर उनका एक होटल अवश्य है, जहाँ की विशेष चीजें गाठिया-पापड़ी और भजीया हैं !

गाठिया—पापड़ी—भजीया और भेल—

गुर्जरो की रसवन्ती जीभ इन्हीं 'चारों धाम' की तीर्थ-यात्रा के लिए विकल-विह्वल रहती है । भेल गुजराती-पारसी जनों की सर्वाधिक प्रिय वस्तु है । गाँडा भेल वालों की दुकानें इन्हीं की बदौलत रोशन रहती हैं ।

भेल में इतनी चीजें चाहिए—

कुरमुरा, चिवड़ा, सेव, पूड़ी, आलू-प्याज और तीन-चार किसम की चटनियाँ—!

गाँडा भेल के अनन्य प्रेमी सेठ बालजी के एक-मात्र पुत्र सेठ लालजी का निर्माण भी भेल की तरह हुआ था, शायद !

पल्लव, चोल, शाक्य, कम्बोज, चौहान, राठीड़ और शेख-सैय्यदों के रक्ताणु लालजी के शरीर तक चले आए हैं, पिछले हजार पाँच सौ वर्षों के इतिहास और वेश-क्रम में, ऐसी बात सेठ बालजी श्रीमती बालजी से कभी-कभी कहा करते थे !

इन सबके रक्ताणु सेठ लालजी के शरीर में पाए जा सकते हैं या नहीं, श्रीमती बालजी को कुछ जानकारी या सरोकार नहीं, पर उनके घर दूध की बाल्टी लाने वाले भैया जी, जिला खैरावाद वाले के वीर्य से लालजी का निर्माण हुआ है—सेठ बालजी के 'रक्ताणुओं' से नहीं—इतना श्रीमती बालजी खूब जानती हैं !

अपने मुर्दार जिस्म और लालजी की हृष्टता के देख-देख, बालजी अपनी कलाइयों को अपनी अँगुलियों से नापते रहते हैं, और एक काली स्याही-सी उनके होंठों पर पुत जाती है, और भैयाजी की राम-राम को वह दातून करते वक्त थूककर, राह चलते खाँसकर, और बीबी के सामने 'दूध गरम' करने का आर्डर देकर टाल देते रहे हैं ।

पच्चीस

नीलाम्बरी, सेठ लालजी की बहू !

जामनगर से बम्बई तक का सफर तय किया शादी ने, पर धर-वधू के बीच का रिश्ता 'हिनोज देहली दूरस्त' बना रहा !

सट्टा बाजार की कमाई ने पिल-हाउस पर गेंदा पठान की बिल्डिंग में चूना-वार्निश करवाया ! गेंदा पठान ने अपनी रमजानी, गुर्बानी और सुलेमानी को लालजी को सौंपकर, पिल-हाउस पर 'रमजानी रेस्टोरेण्ट', फारस रोड पर 'गुर्बानी रेस्टोरेण्ट' और कमाठीपुरा में 'सुलेमानी रेस्टोरेण्ट' की संस्थापना की !

लालजी सेठ रमजानी, सुलेमानी और गुर्बानी पर कुर्बान हो गया ! नीलाम्बरी के प्यार की घाटी में पंखी न चहका, अरमानों की भट्टी में कोयला न दहका—प्यार-खुमार की हर कशिश 'हिनोज देहली दूरस्त' रह गई !

जिन्दगी जत्र कहीं एक-केन्द्र बिन्दु पर आकर थम जाती है, गंदी हो जाती है। नीलाम्बरी की सारी आस्था एक दिन इसी केन्द्र बिन्दु पर आकर थम गई—‘सेठ ने हूँ गमती न थी !’^१

जब कभी, नीलाम्बरी बोली तो सही।

पर, पीपल-पत्ते का पानी !

‘केम, क्याँ जाओशो, हवे रात ना अगियार बागे !’^२

‘तारीबा ने ‘—’ माटे !’^३

—और रात सट्टा बाजार की काली कमाई पर थूक देती।

जब कभी, नीलाम्बरी कहती—‘केम ? तमे तो मारा साथ बोलता न थी ?’^४

लालजी सेठ चांडाल की तरह हँस देता—‘मने घेर ऊपरनी मुर्गी नो शाक भावतोज न थी !’^५

और नीलाम्बरी रात हो जाती !

और यों ही—

एक हजार-एक सौ-सत्तानवे रातें आईं, गईं !

नीलाम्बरी महाकाल-मन्दिर की देवदासी-सी अक्षत-यौवना ही रही—जीवन का इक्कीसवाँ वर्ष न पंछी-सा चहका, न फूल-सा महका !

जो चिड़िया न चहकेगी,

जो फूल न महकेगा,

१. पतिदेव मुझे पसन्द नहीं करते। २. क्यों, अब रात के ग्यारह बजे कहाँ जाइएगा ? ३. तेरी माँ को ‘—’ लिए ! ४. क्यों, आप तो मेरे साथ बोलते ही नहीं ? ५. मुझे घर की मुर्गी का शिकार अच्छा नहीं लगता !

सुरीली आवाज चीख, दबी ही सही, में बदल जाएगी न ?
 सुगन्ध दुर्गन्ध में, कभी तो, बदल ही जाएगी ?
 पंछी को बिना चहके यदि जीना पड़े,
 फूल को बिना महके यदि भरना पड़े,
 नीलाम्बरी की जिन्दगी कुछ योंही-योंही-सी !

घाव जो शरीर पर लगते हैं, यदि नासूर न हुआ, यथा अवधि भर ही जाते हैं, फेफड़े में लगे कीटाणु कहाँ जल्दी मरते हैं ? व्यथा के कीटाणु जब भावनाओं, अनुभूतियों और आकांक्षाओं के फेफड़े को छलनी-छलनी कर देते हैं, मवाद तो दूर, आँसू भी बाहर टपकने बन्द हो जाते हैं। और घाव के अन्दर रहने वाले मवाद से, आँख के अन्दर रहने वाले आँसू जीवन के लिए ज्यादा विषैले, ज्यादा घातक होते हैं !

नीलाम्बरी के जीवन को यह विष व्याप गया।

गहराई तक।

विष का उपचार वमन है तो—

पर, नीलाम्बरी ने विष-वमन विलम्ब से किया। उसका शील, उसका नारोत्व उसे विष-वमन करने से रोकता रहा—पर वह शंकर तो न थी न ?

वह पगली हो गई ?

उसका पागलपन भी कैसा—अपने-आप में, न्याय की तुला पर पीड़ा की चोत्कार करती आत्मा, वेदना को रुला-रुला देनेवाली आँखों से—

रत्ती-भर भी वजनी नहीं !

पर, नीलाम्बरी हुई पगली ही तो !

और जब कभी सेठ घराने के मालिक या मालकिन को उल्टी (कै) हो जाती है, उनका अपना पालतू कुत्ता उसे कदापि नहीं चाटेगा न ?

पर, मुहल्ले के, गली के दरिद्र कुत्ते उस पर चारों ओर से झपट पड़ेंगे ?……

नीलाम्बरी भी जब सेठ-सेठानी की लावारिश-कै-जैसी हो गई, बालजी के घराने में जूँ नहीं पड़ी, नहीं रेंगी—महालक्ष्मी होटल, जो सेठ बालजी द्वारा ही संस्थापित था, के रामा लोगों के लिए अलभ्य-प्रसादी बन गई !

अतृप्त यौवन बगैर दाँत का साँप नहीं होता, जो मदारी के इशारों पर नाचे । वह आकर्षण की पिपरी अपने होंठों पर लिए फिरता है !

नीलाम्बरी की यौवन-पिपरी बजी तो,

किन्तु,

होटल के रामा लोगों के लिए जितनी सुरीली थी,

मनमोहिनी थी,

बालजी घराने के लिए—

उतनी ही फटे बाँस की !

छब्बीस

गूंगा यौवन, नाग-मणि-सा होता है !

उसकी सांकेतिक-भाषा बड़ी मुखर होती है ।

उसके बहके कदम उमर खय्याम की रूबाइयाँ होते हैं !

नीलाम्बरी के बहके कदम बालजी-घराने के लिए 'अज्ञेय' के 'बावरा अहेरी' थे, तो बालजी घराने के भाँड़ी घिस्सू^१ रामा लोगों के लिए 'बच्चन' की 'मधुशाला' थी वह ।

यों सेठ बालजी जानते थे—

घृत-कुम्भ समानारी, तप्तांगार समः पुमान ।

तस्माद् घृतंच, वर्ह्निच नैकत्र स्थापयेद् बुधः ॥

पर, उन्हें क्या पता, उनका 'कुलांगार' लालजी रहमानी, सुले-मानी और गुर्बानी के लिए दिया-उजेला है—किन्तु नीलाम्बरी के

१. बर्तन घिसने वाला ।

लिए तले-अंधेरा !...पठानी-त्रयी के लिए होमाग्नि है, जो 'घृत' से और प्रज्वलित होती है, पर नीलाम्बरी के लिए तुषानल है !

इसके अलावा बालजी 'तस्माद् घृतंच, वल्लिच' को विसर गए, रामा दगडू का घर में पानी भरने को आना उन्होंने दूर की आँखों से देखा ।

बालजी सेठ की आँखें भी दूरवीन थीं ।

पर, उनमें जो 'लैन्स' थे, उनसे बड़ी चीज छोटी दिखाई देती थी—छोटी चीज बड़ी नहीं !

लालजी सेठ 'तड़ा माशे, ख्वार माशे' के देश की रूप-त्रयी में विसुध पड़े थे, नीलाम्बरी की उन्हें कोई गरज न थी !

लालजी बम्बई की भेल-सा चटकदार था, लोक-लाज, मर्यादा या कर्तव्याकर्तव्य का उसके लिए कोई मूल्य न था । एक दिन उसने नीलाम्बरी की लटी को वीभत्स हास्य से विखेरते हुए, कह ही दिया था—“रात्रे अहिं रहीने हूँ शूं करूँ ? हूँ तो द्वारिका नो करसन जेवो; भिन्न-भिन्न उपवनो ना भिन्न-भिन्न पुष्पो ना रसिया भ्रमर ! तारा माटे मारो शूं उपयोग ? तारा माटे तो होटलना रामा लोको हूँ धरी मुकेला छे, ए लोको ना पासे—' ले !”^१

और नीलाम्बरी के मानसाकाश में सतीत्व के प्रति आस्था के रहे-सहे बादल भी उपेक्षा और अपमान के उस प्रचंड वायु में छितरा-

१. “मैं रात को यहाँ रह के क्या करूँ ? मैं तो द्वारिका के कृष्ण-जैसा विभिन्न उपवनों के विभिन्न पुष्पों पर मँडराने वाला रसिया भ्रमर ! तेरे लिए मेरा उपयोग ही क्या ? 'तेरे लिए' मैंने होटल में रामा लोग रखे हैं, उन्हीं से '—' ले !”

छितराकर, लोप हो गए ।

कगारों के ढह जाने पर, नदी को दिशा बदलते बेर नहीं लगती—और, पति का प्यार छिन जाने पर, नारी को !

नीलाम्बरी ने दूसरे ही दिन दगड़ू से वेणी लगाने के लिए कहा । हमेशा चार कदम दूर रहने वाला दगड़ू उस दिन वेणी के फूलों की महक से सुवासित हो गया ।

अलभ्य के चरण-स्पर्श का आनन्द गौरी-शंकर की चोटी पर विजय पाने से कम नहीं ।

नीलाम्बरी की वेणी लगाने के चार क्षण, दगड़ू के लिए, सुखानुभूति के चार कल्प हो गए ।

“इधर से जरा कस के गाँठ मार !”—कहते हुए, सेठानी नीलाम्बरी यों मुड़ी थी, कि दगड़ू के हाथों में उसके कोमल कपोल यों आ गए थे, जैसे बीच बाजार में भूखे कुत्ते की पूँछ पर पाँव पड़ने से किसी गूजरी की दही-हाँडी फूट गई हो !

पर, दगड़ू इन्सान-नस्ली था !

कुत्ता जल्दी दही चाटना शुरू कर देता है—

दगड़ू सोचता रह गया, इन कपोल-किसलयों को थामे भी रहे, या नहीं ? उसका नौकर-संस्कार पालतू सिंह-शावक था, जो शिकार पर जल्दी ही नहीं झपट पड़ता, पर खाने की नियत पर काबू भी नहीं रख पाता, शिकार से नजर नहीं फेर पाता !...

इस स्थिति को दगड़ू की विरादरी में ‘बिजली का करेण्ट’ कहा जाता था !

‘बिजली के करेण्ट’ की स्थिति से, दगड़ू तब सावधान हो पाया, जब नीलाम्बरी अबोली ओट हो गई ।

भूखे शेर की दृष्टि बड़ी तेज, बेधक होती है—

दगड़ू ने देखा, याद रहा, सेठानी के कपोल इतने आरक्त कभी नहीं हुए थे !

सताईस

उस दिन,

दगड़ू रामा ने दारू पीने का आमंत्रण ठुकरा दिया था ।

क्या कुछ उसने सोचा था, वह जाने और उसकी आत्मा ।

इतनी-सी बात थी, फूलों की दुकान में उसकी नजर बढ़िया-से-बढ़िया 'वेणी' खोजती रही, ठीक उसी तरह—जैसे बम्बई के अधिकांश कवि सेठ-पुत्रों की शादियों में बैठने वाले रूमालों में छपने के लिए बढ़िया-से-बढ़िया मंगल-छंद खोजते हैं ।

भूषण-चन्द बरदाई के वंशज नपुंसकों की श्रीलादों के लिए मंगल-छंद लिखते हैं—

तो, दगड़ू को कोई क्या कहे ?

वह गीदड़ था, पर शेरनी के कपोल चूमने की कल्पना तो करता था ? उन शेरों को कोई क्या कहे, जो शेरनी को माँद में गीदड़ों से

काम-वासना शान्त कराते छोड़, बकरियों को चूमने-चाटने दौड़े !

नीलाम्बरी का गात दुहरा हो गया ।

पुरुष-संस्पर्श से वंचिता, मुकुलित-मना दर्पण निहारती रह गई वह । दर्पण वह रोज देखती थी, दर्पण उसने उस रोज भी देखा—
पर, काँच बदल चुका था !

पर, पकवानों की गंध-मात्र पा लेने से क्षुधा शान्त नहीं हो जाती ! वह मन को मुग्ध करती है, पर वृत्त नहीं कर पाती—बुभुक्षा को और संवर्द्धित कर देती है ।

नीलाम्बरी का मन उस संस्पर्श को पाकर, केवल एक टुकड़ा गोश्त पाई शेरनी-सी बिफरती रह गई । वह सोचती रही बहुत-कुछ, पर जब दगड़ू पानी भरने आया—वह उसकी ओर ताकने में भी साँसों को जोर से चलता महसूस करने लगी ।

इतना बड़ी मुश्किल से कहा—“ए, एक गिलास पानी मुझे पिलाना !”

इस ‘ए’ की ध्वनि ने दगड़ू के मन-मोदक में अंकित ‘ए’ को ‘एस’ तक पहुँचा दिया ! उसे लगा, अगर वह कुम्भज ऋषि होता, ‘आचमन’ में ले सप्त-सिन्धु से नीलाम्बरी सेठानी को आकण्ठ पूर देता !

पर, लाया वह पानी एक गिलास ही !...

बम्बई के उस कंगाल को भाँति, जो रात-भर राज-गद्दी पर बैठे रहने का सपन देखने का प्रयास करता है, पर सुबह ‘सिंगल चालू चा’ के साथ बासी पाव ही खाता है !...

“नल का पानी नहीं...,” नीलाम्बरी बोली ।

“मग, कुटचा पाणी आणू मी, सेठानी ?” दगड़ू बोला !

“पानी की भी तो कई किस्में होती हैं !”—नीलाम्बरी के सुनील नयन मटक ही गए। पर, इशारा उसने खिड़की में रखी सुराही की ओर किया।

दगड़ू के सुराही तक पहुँचते-पहुँचते,
नीलाम्बरी सेठानी को सुराहीदार गर्दन में कितने बल आए-
गए। छाछ-सी मथी जाती भावनाएँ, उद्वेग-उत्तेजना का नवनीत
नयन-कलशी-माथे तिरा ही जाती हैं।

दगड़ू पानी लेकर लौटा सही,

पर, मन की आग जो भड़की, उसे न दबा सका।

गिलास देते, जाने-अजाने, उससे सेठानी का हाथ दब गया,
तो सेठानी नीलाम्बरी ने ‘हट्ट’ कह दिया। दगड़ू को लगा, इस ‘हट्ट’
में सेवड़े का जादू है, और उसने सेठानी के साथ जो-कुछ किया, उसे
उसकी विरादरी में ‘जिसम कूँ मसल के पप्पी लेना !’—कहा
जाता था !

गरापत के शब्दों में—

“पप्पी, बोले तो, चुम्बन !

म्हणजे ‘किस’ !

‘किस’ का ‘नरगिस’ का तुक, बोले तो, एकच !

किस, म्हणजे, ‘नरगिस’ का जाने-जिगर !

आत्मा-परमात्मा, बोले तो, येच !

एकच !……”

अट्ठाईस

जिसमकूँ दबाकूँ पप्पी लेने की बात आक्खी^१ विरादरीकूँ मालूम पड़ गेली ! विरादरी में एक-से-एक जासूम ! आक्खी मुबई का पानी च ऐसा जालिम । कलेजे ऊपर जवानी का दीड़ा-करकट लोग खुजली मारने को । खुजली, बोले तो, मदमस्त जवानी !

जालिम जवानी !...

कासम भाऊ का हिसाब से, बोले तो, कातल जवानी !

‘कातल जवानी’ का तुक, बोले तो, सेठानी !

सेठानी-में-सेठानी, बोले तो, कोण !

नीलाम्बरी च !^२

नीलाम्बरी का दगड़ू, बोले तो, जाने-जिगर !

ये च आत्मा, परमात्मा !

१. सारी । २. नीलाम्बरी ही ।

पण, विरादरी के लोग, साले जालिम !

साले लोग दगड़ू को पट्टी पढ़ानेकूँ—“काय, भाऊ, तुमी एकटा मजा छेऊँ नये ! काय, नाहींतर तुमाला भारी पड़ेल, इकड़े राहायला ? !”

दगड़ू, बोले तो, एक च डरपोक ।

विरादरी के लोग ‘वण्डल’ ठोक दिएले, क्या, साला अपना हिस्सा नहीं करिगा, तो लाल जी सेठकूँ बोलके, भत्ता खाने बड़ी बिल्डिंग में भेजने को !……

इनसपेटर दाँडेकर, बोले तो, लाल जी सेठ का जाने-जिगर !

अपन होवे, तो क्या, अभी आप लोग बोलिगा, ‘गणपत भाऊ ‘वण्डल’ मारता है !’—पण, अपन तो सेठानीकूँ लेके सीधे सातारा भी चल देता ।

पीछूँ लालजी सेठ, इनसपेटर दाँडेकर क्या हमारा घंटा उखाड़ता था ? पण, भागकूँ किधर जाते थे ? इनसपेटर दाँडेकर सरकार का जमाई । उसका हाथ में आक्खी मुबई का ‘पावर’ !

जिसकी माँ-बहन का चाहे इज्जत ले लेवे ।

सरकार का राज ऊपर, माँ-बहन लोग का इज्जत, बोले तो, इलाहाबाद का पीरू-सरीखा ! अपना माँ-बहन लोग, बोले तो, आक्खी मुंबई में ।

अपन को तो नीलाम्बरी सेठानीकूँ देखकूँ रहम आवे ।

होटलों के रामा लोग उसका जिसमकूँ कापूस^२ का माफिक

१. “क्या, भैया अकेले ही मौज मत करना । नहीं तो तुम्हे यहाँ रहना मुश्किल हो जाएगा !” २. रुई ।

धुन दियेले ! मस्का का माफिक जिसमकूं भजीया-सरीखा कर दियेले ।

अपन रामा लोग, बगैर पट्टा-जंजीर के कुतरे ।

कोई पण कु-इलम अपन लोग से छुटेला नहीं ।

राणा^१ लोग के यहाँ से गरमा-परमी-सरीखा हलकट रोग जिसम कूं लगाकूं लाने को । पीछूँ वोच हलकट रोग लेकूं दूसरा माँ-बहन लोग के साथ सोने के ।

गुनाह, बोले तो, ये च !

नीलाम्बरी सेठानी पण अमेरे हलकट रामा लोग के गुनाहों से बरबाद । कासम भाई का माफिक बोले तो, नाशाद जिदगी ! पीछूँ गएले पंधरा (पन्द्रह) बरस के अन्दर नीलाम्बरी कूं तीन बच्चे हुएले ।

खुद सेठानी, बोले तो, दगड़ू का घर-बार जाकूं पीछूँ मर गएली ! वच्चा लोग, अनाथाश्रम-ऊपर । दगड़ू गट्टर का गट्टर में च ! रहमानी होटल में तंदूर-ऊपर !

तंदूर का तुक, बोले तो, मजबूर !

मजबूर, बोले तो, कोण ?

नीलाम्बरी सेठानी पण,

गरीब रामा लोग पण,

दोष अपन किसकूं देवे ?

बरबादी, बोले तो, ये च गरीब की जिन्दगी का जाने-जिगर !

आत्मा-परमात्मा एक च !

जाने-जिगर का तुक क्या—

वो चली किधर ? वो चली किधर ?

पीछूँ, अपन इस बखत किधर कूं जा रयेला है ?

अपना भी याददाश्त, बोले तो, एक च कातिल !

कासम भाई बोलता होता—

“याद जब आती है, बिना किए आती है—

क्यों नहीं आएगा खुद वो, जब कभी बुलाएंगे ?”

शेर का मतलब इतना च—याद कमजोर होवे तो, पीछूँ अं-
अः से अ-आ की तरफ कलम ले जाने के ।

कलम-में-कलम, बोले तो, शाहिर भारती व्यास का—

खुद दारू पीकूँ,

हमेरे वास्ते पेशाब बतावे !.....

पेशाब का नाम ऊपर च अपने को उल्टी आता है ।

उक्.....उक्.....उक्.....

उन्तीस

पेशाब,
बोले तो,

आप लोग बोलेगा, कईसा हलकट जबान मुंह ऊपर लाता है !
पण, अपन आप लोग से ये च विनती करता, क्या, तोंड़^१ देखके
'—' का रूतबा नहीं देने को ? बुजरग लोग बोलते होते, कैसी
पेशाब का पैदाइश है ! इसका मतलब आपको बोर्लिंगा, तो कइसी
वंश-परम्परा में पैदा हुआ, ये च ! पीछूँ पेशाब शब्द मुंह ऊपर आवे,
तो गधी का '—' का माफिक मुंह काहेकूँ बनाने के ?

पेशाब का तुकबोले तो, नबाब !

कासम भाई को अपन लोग डेढ़ नबाब कहते होते ।

कलंदर का गाँठी जरा मजबूत होवे, तो गबरडीन का सूट और

कबाब से नीचूँ बातच नहीं करे । डेढ़ नबाब का मतलब ये च ।

रफ़ता-रफ़ता इलाहाबाद का पीरू, बसई का केला पकता है ।
रफ़ता-रफ़ता च जिन्दगी । रफ़ता-रफ़ता च दरेक चीज याद आता है ।
अपन भी ये हिस्टरी रफ़ता-रफ़ता च कह रयेला !.....

पीछूँ आप लोग सबूर^१ नहीं करिगा, तो अपन आप लोग का
बाप का नौकर नहीं है । अपना च थूक, अपना च '—' हम सीखेला
च नहीं । भूठ बोलिगा, हमेरे को चार लाफा मारना । क्या, आप लोग
अपना माँ-बाप का जगह पर ! आप लोग दश जूती भो मारेगा,
हम हाथ च जोड़िगा ।

पण, अपन कहिगा तो ये च—सबूर का फल मीठा च होता
है । वो हाजी मलंग शा का दरवार देखके अपन आएले । उधर च
एक बाबा अपन को बोले होते, “बेटा सब करेगा.....”

अपन को गुस्सा आएला । कड़काई का हालत ऊपर होता ।
अपन बोल दिया—“बाबा, सबूर करता-करता, हमेरी हालत भिंडी
बाजार के गफूर-सरीखी हो गई । अभी क्या आक्खी जिन्दगी-भर
बाबाजी का घण्टा सबूर करे ?”

बाबा हमेरे जबाब से खुश.....

अपन को वोच बाबा 'डबल' का आँकड़ा^२ दिएले । हमेरे पास
वो दिवस फकत एक च रुपया होता । आठ आना बाबाजी ले लिए ।
आठ आने का अपन आँकड़ा लगा दिया ।

चौके से पंजा !—

१. सब । २. बम्बई में सट्टा खूब खेला जाता है । 'अपन-बलोज' दोनों
फौगरों को 'डबल का आँकड़ा' कहते हैं ।

येच पंजा वो दिवस हमेरा सिर गंजा कर दिया । बाबा जी का '—' में हस्ती का '—' मारिगा, काहेकूँ अांकड़ा आएगा ! उलटा हमेरा चाय-पानी का बांदा हो गएला ।

जादूगर संया, छोड़ मोरी बैया—

सुलेमानी होटल का ख्वाजा भी, बोले तो, एकच बोगस ।

साला, दुकान बन्द करते टैम दररोज येच गाणी लगाएगा । ये टैम ऊपर तो 'पकड़ मोरी बैया' लगावे तो मजा । येच टैम ऊपर आक्खी मुंबई वाले जोरू का हाथ पकड़ कूँ सीना-छाती ऊपर दाबते ।

हा...हा.....

हो...हो.....

लगा-लिपटी, प्यार-मोहोबत का दास्तान बोलते बखत अपने को भी आनन्द आता है । पण, पीछूँ थोड़ी देर में सुबू' हो जाईगा । सुबू-सुबू अपन भगवान् का नाम लेंगा ।

अभी हिस्टरी जरा जलदी खतम करने के ।

हिस्टरी का तुक, बोले, कबूतरी !

भुलेश्वर का सेठानी लोग पण, कोई-कोई, कबूतरी का माफिक । फुर्र से इधर कूँ, फुर्र से उधर कूँ ।

जिस पोरी का अपन हिस्टरी बोलता होता; वो पोरी, साहिबा, जिसकूँ देसाई सेठ घेर ऊपर लाए होते—नीलाम्बरी सेठानी की दीकरी^१ जमुना । दातून बेचकूँ अपनी गुजर करती होती ।

पटवद्धन को क्या मालूम ?

येच जमुना पीछूँ 'महाराष्ट्र नाट्य मंडली' की बाई नटी शकुन्तला बाई बन गएली । वोच शकुन्तला, जिसका ऊपर पटवर्द्धन के सेठ अपनी आक्खी जिन्दगी कुरबान कर दिएले ।

औरत का हुसन, बोले तो, ऐमा च जाने-जिगर ।

कोई-कोई, सेठानी लोग का जोबना, ऐसा च जालिम !

कासम भाई बोलता होता—कुरबान जाऊँ !

उसका शेर-में-शेर, बोले तो, 'जोबना को दिन मोरो आने दे, सैया !

जादूगर सैया,

छोड़ो मोरी वैया,

अब घर जाने दो—

हो गई आधी रात !'

कुरबान जाऊँ !

कुरबान कोई जावे तो अपना वसुन्धरा बाई का ऊपर ।

वसन्ती बाई का ऊपर ।

भुलेश्वर दा, कोई-कोई, सेठानी लोग का ऊपर—खाने कूँ तर माल देवे, चिटक के सोने कूँ, जवानी का मजा लेने कूँ मस्का-सरीखा जिसम, पीरू-सरीखी छाती ।

अपन गरीब रामा लोग के माँ-बाप ये लोग ।

नहीं तो सेठ लोग का वास्ते हमेरी जिन्दगी, हाथ ऊपर का कबूतर । चुग्गा खिला-खिला कूँ गट्टर-का-गट्टर में च रहने देवे ।

कबूतर में कबूतर, बोले तो,

अपना भुलेश्वर के !

एक जागा ऊपर एक लाख से ज्यादा ।

कबूतरखाना येच !

कबूतर में कबूतर, बोले तो, अपन गरीब का औलाद ।

हमेरे लोग का वास्ते आक्खा मुंबई कबूतर खाना ……

कबूतर खाना का तुक, बोले, देखो, आया ये कैसा जमाना !

जमाना, म्हणजे, जिन्दगी का जाने-जिगर !

कुरबान जाऊँ !

जोबना को दिन मेरो……

उक्…!

उक्…!!

उक्…!!!

तीस

अपन अभी पिल-हाउस का नाका-ऊपर पड़ेला है ।

पिल-हाउस—गोलपीठा—कमाठीपुरा—

मुंबई शहर का जिसम ऊपर का कोढ़ ।

सरकार का जिसम ऊपर का कोढ़ ।

सरकार, बोले तो, मुंबई के सेठ लोग का वास्ते—

सैंया भए कोतवाल !—

हम गरीब लोग का मजबूर माँ-बहन लोग इधर, रोटी का वास्ते,
जिसम का बोटी-बोटी नुचवाने के । सरकार का राज, बोले तो,

राम-राज ! राम-राज ! साहिब, राम-राज !

ऐसा राम-राज कदी कोई देखा नहीं होईगा !

सीता माई का बेटा-बहन लोग खिड़की ऊपर बैठकूँ जिसम का
सौदा करने के । कुरबान जाऊँ, इस राम-राज ऊपर ! रावण-राज

का कुंभकरण सहा^१ महीना बाद एक दिवस को उठता होता, इस राम-राज के कुंभकरण चौबीस कलाक^२ जागते रहते !.....

गरीब लोग का हड्डी-पसली चबाते रहते ।

कुरबान जाऊँ—!

येच आश्चर्याची गोस्ट!

रावण-राज में माँ-बहन लोग राण का धंधा नहीं करते होते । इस राम-राज को कोई क्या बोलिगा ? येच राम-राज है, तो इस युग का राम को अपन क्या बोले ?

सलाम—सलाम—सलाम.....

येच पिल-हाउस ऊपर हम एक पिकचर देखा होता । गया अठ-वाडियाया^३ । पिकचर का नाम होता—हा-हा-ही-हू !

अपन जब कभी भी पिकचर देखता है,

विट्टल भाऊ का याद आता है ।

येच पिलहाउस ऊपर पहले वो रामभरोसे में, पीछूँ ताज सिनेमा में नौकरी करता होता । उसका जमाने में अपन दर-अठवाडिया मुफ्त में पिकचर देखता होता । ज्यास्ती करके, विट्टल भाऊ हमरे को इंग्लिश पिकचर दिखाता होता ।

बोलता होता—“गरापत भाऊ, पिकचर देखने के, तो बस इंग्लिश पिकचरच देखने के । ये लोग की सरीखी चूमा-चाटी हिन्दुस्तानी लोग सिखेले नहीं ।”

पण, ज्यास्ती करके वो अपना वस्ताद लंगड़दीन उस्मान के साथ रहता, बातचीत करता होता । वस्ताद उस्मान भी एक च

१. छः महीने । २. घंटे । ३. गत सप्ताह ही ।

जासूस । एक च रंगीला मुसाफिर ।

विट्टल भाई का जिन्दगी,

विट्टल भाई का हिस्टरी,

हमेरे लिए हाथ-ऊपर का चोपड़ी ।

हिस्टरी में हिस्टरी, बोले तो, विट्टल भाऊ की !

रामन्ना भाऊ की !

दोनों लोग गरीब । कबूतर का माफिक ।

उनके लिए, आकखी मुंबई कबूतरखाना-सरीखी ।

सबूर करो, साहिब,

अपन दोनों का हिस्टरी बोलेगा ।

हिस्टरी बोलने का टैम येच, जभी देसाई सेठ वसुन्धरा बाई का हाथ पकड़ रहा होईगा, लालजी सेठ रहमानी-गुर्बानी पठानी का । कासम भाई का माफिक बोले तो,

येच आलम जवानी का ।

इसी बखत का वास्ते फिलमिस्तान वाले 'जवानी की रेल चली जाए, रे !' गायी बणाएले । फिलमिस्तान का तुक, बोले तो, कब्रिस्तान !

हलकट लोग 'नागिन', 'शहनाई', 'सरगम', 'खिड़की', सरीखा जालिम पिक्चर बनाकू लोग-बाग का सुख-चैन, मान-मर्यादा, नेक-नियती कब्रिस्तान में पहुँचाने के ।

कब्रिस्तान में पहुँच के आदमी शान्ति का साथ सोने को । परा, 'फिलमिस्तान' हिन्दुस्तान का वास्ते कब्रिस्तान से भी खतरनाक !

'फिलमिस्तान' वाले गरीब लोग की जिन्दगी को कब्रिस्तान में ले जाकू च छोड़िगा—ऐसा हमेरे को लगता है ।

मुंबई के सेठ लोग गरीब की जिन्दगी को गट्टर-का-गट्टर में रहने देने के वास्ते च 'फिलमिस्तान'-सरीखा कब्रिस्तान बनाते । गांधी-जवाहर के देश में ऐसा-ऐसा हलकट फिल्म कम्पनी, बोले तो, सरकार का मुँह पर कालिख-सरीखा ।

अभी अपन को ज्यादा टैम नहीं ।

अभी विट्टल भाऊ की हिस्टरी,

रामन्ना भाऊ की हिस्टरी बोलिगा !

पीछूँ सुबू-सुबू भगवान् का नाम !

भगवान् का नाम, बोले तो, पांडुरंग-विट्टल !

अरे, विट्टल तो आला, आला—

मला भेटायला !

विट्टल तो आला, आला—

विट्टल तो आला,

विट्टल तो—

उक्……

इकतीस

वोच बोलता—

जो आँखी से देखा, कानों से सुना—

वोच हिस्टरी अपन आप लोग को बोल दिया । हस्ती का दाँत का माफिक जिन्दगी अपन को पसंदच नहीं । हस्ती का दाँत का माफिक, बोले तो, पोल-पट्टी वालो जिन्दगी !

भारती व्यास का माफिक !

करसन सेठ का माफिक !

पारसी सेठ का माफिक !……

विट्टल भाऊ, रामन्ना भाऊ और हमेरे माफिक हजारों लोग येच मुंबई में कबूतर का माफिक जिन्दगी का दिवस पूरा करने को । येच वास्ते अपन आखी मुंबई को कबूतरखाना च बोलता ।

अभी अपना वादा पूरा ।

सुबह होने का टैम ।

गायकवाड़ हौलदार का आने का टैम……

अभी हम कुछ और हिस्टरी बोलिगा, तो दारू पियेला बोलके वो फाकलण्ड रोड का लॉक-अप-ऊपर ले जाईगा । वो लॉक-अप में खटमल-मच्छर, बोले तो, मुंबई का सेठ-सेठानी का माफिक—

खून को पानी बना कूँ रख देवे !

पानी का तुक, बोले तो, जवानी ।

येच वास्ते, लावनी—

जवानी की रेल चली जाए, रे !

अभी सुबह-सुबह ऐसा हलकट लावनी गाईगा, तो आप लोग अपन को बेशरम बोलिगा ।

बेशरम का तुक बोले तो,

ईमान-धरम !

ईमान-धरम, बोले तो,

येच आत्मा-परमात्मा !……

अच्छा अभी सुबह होने का टैम……अपन चलिगा । रामा लोग का जिन्दगी, येच सुबह के टैम से शुरू……जाकूँ सेठ का घर का, बिस्तर का सफाई !……भाँडी-बरतन पानी से भरने का । पीछूँ, जूठा भाँी घसना, येच किस्म-किस्म का काम-धंधा—मारुति देवा' की पूँछ का माफिक—कल रात का उसी टाइम तक, जिस टाइम अपन दारू पिया ।

दारू पीने वाले की तो—'—' का……

दारू, बोले तो, येच गरीब लोग की जिन्दगी की बरबादी के वास्ते बंदोबस्त...जो कुछ भी कमाई करने को, येच दारू की बाटली पेट में भर कूँ, जेब-खीसा खाली करने कूँ !...खीसा खाली...भपका भारी...दारू, बोले तो, हम गरीब लोग का वास्ते जान मारू...

कईसी जान-मारू ?...

उक्.....

निम्मी-नरगिस-सुरैया का माफिक.....

सेठानी वसुन्धरा बेन, वसन्ती बेन का माफिक.....

उक्.....

फिलमिस्तानी सिनेमा का माफिक.....

नटी शकुन्तला बाई का माफिक.....

उक्.....

और कईसी...?

सरकार का मा.....

अरे, कईसा हलकट और पतला पेशाब का माफिक बात बोल रिया है अपन भी...?...सरकार बम्बई में दारूबंदी का फरमान जारी किएली...दारू का बाटली का पाटिया आउट किएली...बोले तो, गरीब लोग की बरबाद जिन्दगानी कूँ सही लैन पर लाने कूँ बंदो-बस्त कर रयेली.....

उक्...बच्च ! सँभल जा.....

येच दारू गणपत रामा की जिन्दगानी कूँ वरली के गटर में पहुँचायेली...कईसी ?...बांदरा के बुन्दू खाँ मियाँ के झूकरोँ^२ का

माफिक...! ..सरकार ?

हमेरी आई-बाप.....

बंद करवाकूँ रख देवे इस पेशा...उक्...नहीं रे, दादा लोग !...
जहर का दरिया को बंद करवा देवे, तो गणपत रामा लोग का
बरबाद डूकर की माफिक सड़ेली जिन्दगानी से पारले का पिपरमेण्ट
का माफिक खुशबू मार देवे

अभी आप लोग च बोलो, साहिब ?...अभी अपन आप लोग
से वायदा किएला, कि रामन्ना भाऊ, बिट्टल भाऊ का हिस्टरी आप
लोग को सुनाएगा ..किया, कि नहीं ?...और आप लोग जानता
होईगा, कि गणपत रामा अपन। गर्दन कटा देईगा, परण वायदा-
खिलाफी को करकूँ, आप लोग का गू ..नहीं, साहिब, अभी सुबू होने
का टैम...भगवान् पांडुरंग बिट्टला और गंगा-जमुना मैया का नाम
लेने का टैम...ऐसा जोरदार पुण्यात्मा येच परमात्मा टैम में अपन
हलकट-सड़ेला लपजों को अपना दो इंची जबान से निकालेगा नहीं...
येच हमेरी कसम ! येच हमेरा वायदा !.....

सुबू का टैम...बोले तो, गणपत रामा के लिए, सेठ करसनदास
माणकदास का जूठा भाँडी घसने के वास्ते तैयार रहने का टैम और
सेठानी वसुन्धरा बेन का वास्ते

नहीं, साहिब, सुबू का टैम, बोले तो, आई-बहन का वास्ते दोनों
हाथ जोड़के दुआ करने का टैम ..वसुन्धरा बेन, वसन्ती बेन—येच
दोनों हमेरे वास्ते, आप लोग का वास्ते, आक्खा .हिन्दूस्तान का वास्ते
आई-बहन, येच मदर-सिस्टर का माफिक...आई-बहन, मदर-सिस्टर,
बोले तो, सबका एक-सरीखा ! हमेरी मदर-सिस्टर, बोले तो, आप
सब लोग की...हमेरा फादर याने येच बाप-पिताजी, बोले तो, आप

सब लोग का फादर !

वो, देखो, साहिब ! ... सड़क ऊपर का बत्ती गुल होने को ... याने सुन्न होने को, बोले तो, अपन अभी सेठ का भांडी घमने कूं, पानी भरने कूं, भाड़ू लगाने कूं दौड़ने का ... बोले तो, मरणपत रामा को अपने जिगरी दोस्त बिटुल भाऊ, रामन्ना भाऊ का आन्खा हिस्टरी बोलने को गुंजायश नहीं, टैम नहीं ! ...

अच्छा, अपन अभी आप लोगों को सुन्न-सुन्न का सलाम मारिगा ... सलाम सा ...

मगर, ठहरो, साहिब लाग ! ... आप लाग अभी हमरे ऊपर मेहरबानी करकूं जरा सन्न करो ... आप लोग को सलाम पीछूँ मारिगा ...

पहला सलाम अपन उस-नेकबस्त सरकार शहंशाह को मारिगा, हमराजा जवाहरलाल परमात्मा को, रायबहादुर महात्मा मोरारजी देसाई साहिब की मारिगा, जिनका मिहरबानी और जबर्दस्त कोशिश से येच डैमिश बम्बई शहर में वारूबन्दी का बहंग्लाही कानून लागू होने को ...

वारूबन्दी कामयाब, बीले तो, मरणपत रामा का बरबाद जिबगी आबाद ! ... गरीब लोग का नाशाद जिबगी कामयाब ! ... येच कास्ते, सरकार, बोले तो, हमेरी आई-बाप, बोले तो, मदर-फादर ! ...

मरणपत रामा, बोले तो, सेठ लोग का कबूतरखाना का एक पाँखी टूटेला कबूतर ... और सरकार शहंशाह का, बोले तो, एक गरीब, गुनेवार, डैमिश, सड़ियल-अड़ियल और गुमराह बन्ना ! ... येच लाधारिशी का नतीजा, बोले तो, दरेक किस्म के गुनाहों में, बदफेलियों-बदमाशियों में—गरीबी और बदनशीबी की बजेह से—

पड़ने का कारण से इतना हलकट, इतना बदजुबान, इतना बदतमीज होने को, कि आक्खी रात दारू का गलीच नशा से मदहोश होकर, प्राप सब आई-बाप लोम का नींद हराम करने को

माफी करना, साहिब ! ..

आज से कभी अपन दारू का बाटली का खुशबू लेना भी पेशाब पीना का माफिक ..

मगर, साहिब, अपन अभी सुबू का टैम भूठी कसम नहीं खाईगा ! .. माफी करना ! .. बोले तो, हमेरी लावारिश जिन्दगानी में, पांखी टूटेले कबूतर का माफिक जिन्दगानी में चारों तरफ से—आगे-पीछूँ से, ऊपर-नीचूँ से—देखो, तो येच बेशुमार गमगीनी का, बरबादी-बदनशीबी का दरिया-समंदर !

.....पीछूँ अपन गमगीनी का, बरबादी-बदनशीबी का दरिया-समंदर को पार करने का वास्ते दारू का बाटली को किश्ती का माफिक इस्तेमाल नहीं करिगा, तो क्या अपनी '—' को '—' ..

बोले तो, साफ बात, दारू पिएगा ..

भूठी कसम नहीं खाएगा ! ..

भारती व्यास का माफिक हलकटपना करके हस्ती का दाँत नहीं दिखाएगा ..

बोले तो, दारू हमेरा बाप पिया, हम पिएगा और सेठानी वसुन्धराबेन, वसन्तीबेन .. याने किसी भी डैमिश औरत से हमेरा पैदा होने वाला बेटा भी पिएगा .. !

नहीं तो, हमेरे को हमेरी गंगा बहन दो, हमेरे को हमेरी आई दो, हमेरे को हमेरी सईदन दो .. आप लोग, हमेरे आई-बाप, हमेरे को कबूतरसे इन्सान का जिन्दगी दो हम गरीब लोगन पर रहम करो,

हमेरे माई-बाप ! ..आप लोग हमको इस गटर की जिन्दगी से ऊपर निकाल कूँ, गटर के कीड़े से इन्सान बनाओ—पीछूँ हम कभी भी एक लफज परण बदतमीजी का बोले, तो हमेरी जबान खींच लेना ! ..

आप लोग अपने लावारिश बेटे, इस गणपतरामा को कलेजे से लगाकूँ देखो, अपन दारू पीना पेशा ..

सच्ची बात, बोले तो, बिना कसम की ..

दारू का बाटली को हाथ लगाना भी पाप समझिगा !

येच हमेरा आप लोग को देने का वायदा !

येच हमेरी जिन्दगी का वसूल ..

येच कबूतरखाने से निकलने की स्कीम ..

अच्छा, साहिब लोग, आप लोग का बहुत कीमती टैम अपन ले लिया .. अब चलिगा ..

सलाम, साहिब !

राम-राम, साहिब !

राम-राम, से ..

उक् ..

उक् ..

